समाजशास्त्र परिचय

कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक

समाजशास्त्र परिचय

कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती हैं। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं

अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समूह के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और समाजशास्त्र पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर योगेंद्र सिंह की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान दिया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनीटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी, जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए दो शब्द

यह पाठ्यपुस्तक समाजशास्त्र के परिचय हेतु एक आमंत्रण है। यह समाजशास्त्र विषय का विस्तृत एवं बोझिल वर्णन नहीं है, अपितु यह हमें इसका बोध कराती है और साथ ही समाज को समझने एवं अपनी ज़िंदगी को बेहतर समझने में समाजशास्त्र किस तरह हमारी मदद करता है, उसका ज्ञान प्रदान करती है। यह पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, उसकी संकल्पनाओं एवं अनुसंधान के साधनों से परिचित कराती है। यह पाठ्यपुस्तक दर्शाती है कि किस तरह समाजशास्त्र एक विषय की तरह इस तथ्य से संबंधित है कि हममें से प्रत्येक, समाज के सदस्य की तरह, समाज के बारे में सामान्य बौद्धिक विचार और समझ रखता है। समाजशास्त्र ज्ञान के एक निकाय के रुप में समान्य बौद्धिक ज्ञान के निकाय से कैसे अलग है जोकि समाज में अवश्य पाया जाता है? क्या यह अपनी पद्धति और उपागम के कारण अलग है या यह इसलिए अलग है क्योंकि यह लगातार आलोचनात्मक प्रश्न पूछता है, क्योंकि यह किसी भी विचार को बिना विमर्श के स्वीकार नहीं करता?

हम इस तरह के कई और प्रश्न जोड़ सकते हैं। समाजशास्त्र एक ऐसा विषय है जोकि हमें समाज, जिस तरह से कार्य करता है, वह क्यों और कैसे करता है, इसकी समझ देता है और इसके बारे में प्रश्न पूछने के लिए प्रशिक्षण देता है। इसीलिए समाजशास्त्र में प्रयुक्त शब्द एवं संकल्पनाएँ ज़रूरी हैं क्योंकि वही समाजशास्त्रीय समझ के हमारे साधन हैं।

समाजशास्त्र में आलोचनात्मक दृष्टिकोण के अलावा अन्य विविध दृष्टिकोण और विवादी दृष्टिकोण भी पाए जाते हैं। यह बहुलता इसकी ताकत है। समाजशास्त्र के अंतर्गत समाज के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण हैं, उन्हें वाद-विवाद के ज़रिए उपयोगी रूप में समझा जा सकता है। वाद-विवाद अकसर एक प्रघटना को बेहतर तरीके से समझने में मदद करता है।

समाजशास्त्र की प्रश्न पूछने और बहुल प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए यह पाठ्यपुस्तक पाठक के साथ लगातार यह सोचने ओर दर्शाने में संबद्ध रहती है कि समाज में क्या हो रहा है एवं हमारे साथ एक व्यक्ति के रूप में क्या हो रहा है। इसीलिए पाठ्यपुस्तक में

दिए गए क्रियाकलाप पाठ्यसामग्री का एक अभिन्न अंग हैं। पाठ्यसाम्रगी एवं क्रियाकलाप मिलकर एक समग्र बनाते हैं। एक के बगैर दूसरे को नहीं समझा जा सकता। समाज के बारे में बनी बनाई जानकारी प्रदान नहीं करना बल्कि समाज को समझने में मदद करना ही इसका उद्देश्य है।

समाज स्वयं बहुल, विविध एवं असमान है। यह पाठ्यपुस्तक इस जटिलता को प्रत्येक अध्याय में दर्शाने का प्रयास करती है। उदाहरण एवं क्रियाकलाप दोनों ही इस जटिलता को अध्याय में लाने का प्रयास करते हैं। अत: क्रियाकलाप पाठ्यसामग्री का आवश्यक भाग है। फिर भी सभी पाठ्यपुस्तकों की तरह यह एक शुरुआत है। इसके साथ ही और बहुत सारी सीखने की रोमांचकारी प्रक्रियाएँ कक्षा में होंगी। विद्यार्थी एवं शिक्षक और बेहतर तरीकों, क्रियाकलापों एवं उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं तथा पाठ्यपुस्तक को और बेहतर बनाने के बारे में सुझाव दे सकते हैं।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति
हरि वासुदेवन, *प्रो.फ़ेसर*, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता।

मुख्य सलाहकार
योगेंद्र सिंह, *प्रो.फ़ेसर एमेरिटस*, सेंटर फॉर द सोशल सिस्टम, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

सदस्य

अंजन घोष, *फ़ैलो*, सेंटर फॉर स्टडीज़ इन सोशल साइंसेज़, कोलकाता।

अरविंद चौहान, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल।

अरशद आलम, *लेक्चरर*, सेंटर फॉर जवाहरलाल नेहरू स्टडीज़, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली।

महेंद्र नारायण कर्ण, *प्रो.फ़ेसर* (सेवानिवृत्त), समाजशास्त्र विभाग, नॉर्थ इस्टर्न हिल विश्वविद्यालय, शिलांग।

एस.श्रीनिवास राव, *असिस्टेंट प्रो.फ़ेसर*, ज़ाकिर हुसैन सेंटर फ़ॉर ऐजुकेशनल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

जितेंद्र प्रसाद, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक।

दिनेश कुमार शर्मा, *प्रो.फ़ेसर*, समाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

देबल सिंह रॉय, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, इंदिरा गांधी नेशनल ओपन विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

पुष्पेश कुमार, *डॉक्टोरल फ़ैलो*, इंस्टीच्यूट ऑफ़ इकोनोमिक ग्रोथ, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

मंजू भट्ट, *प्रोफ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

मैत्रेयी चौधरी, *प्रो.फ़ेसर*, सेंटर फ़ॉर द सोशल सिस्टम, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

राजीव गुप्ता, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

राजेश मिश्र, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शुभांगी वैद्य, *असिस्टेंट डायरेक्टर*, रीजनल सर्विस डिविजन, इंदिरा गांधी नेशनल ओपन विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

सोमेंद्र मोहन पटनायक, *प्रो.फ़ेसर*, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सतीश देशपांडे, *प्रो.फ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

हिंदी अनुवाद

रामकिशन, *अनुवादक* (सेवानिवृत्त), इंदिरा गांधी नेशनल ओपन विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

सारिका चंद्रवंशी साजू, *एसोसिएट प्रो.फ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य समन्वयक

सारिका चंद्रवंशी साजू, *एसोसिएट प्रो.फ़ेसर*, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग देने हेतु करुणा चानना, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), ज़ाकिर हुसैन सेंटर फ़ॉर ऐजुकेशनल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली; आभा अवस्थी, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; मधु नागला, *प्रोफ़ेसर*, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक; दिशा नवानी, *लेक्चरर*, गार्गी कॉलेज, नयी दिल्ली; विश्वरक्षा, *लेक्चरर*, समाजशास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू; सुर्दशन गुप्ता, *लेक्चरर*, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पलोरा, जम्मू; मनदीप चौधरी, *पी.जी.टी.* (समाजशास्त्र), गुरु हरकिशन पब्लिक स्कूल, नयी दिल्ली; रीटा खन्ना, *पी.जी.टी.* (समाजशास्त्र), दिल्ली पब्लिक स्कूल, नयी दिल्ली; सीमा बनर्जी, *पी.जी.टी.* (समाजशास्त्र), लक्ष्मण पब्लिक स्कूल, नयी दिल्ली; मधु शरन, *प्रोजेक्ट डायरेक्टर*, हैंड इन हैंड, चेन्नई; बलाका डे, *प्रोग्राम एसोसिएट*, युनाइटेड नेशनल डेवलपमेंट प्रोग्राम, नयी दिल्ली; निहारिका गुप्ता, *फ्रीलांस एडीटर*, नयी दिल्ली और जेसना जयाचंद्रन, *शोधकर्ता*, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली का आभार व्यक्त करती है।

परिषद् सविता सिन्हा, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष*, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग का भी उनके सहयोग के लिए आभार व्यक्त करती है।

परिषद् यॉन ब्रीमन तथा पार्थिव शाह का, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक *वर्किंग इन दा मिल नो मोर* से छायाचित्रों का उपयोग करने हेतु आभार व्यक्त करती है। कुछ छायाचित्र पर्यटन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली; राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली; द *टाइम्स ऑफ इंडिया*; द *हिंदू*; *आउटलुक* और *फ्रंटलाइन* से लिए गए हैं। परिषद् लेखकों, कॉपीराइट धारकों तथा प्रकाशकों के प्रति उनके द्वारा प्रदत्त संदर्भ सामग्रियों के लिए आभार व्यक्त करती है। परिषद् प्रेस सूचना ब्यूरो, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, नयी दिल्ली को भी उनके फ़ोटो पुस्तकालय में उपलब्ध चित्रों के उपयोग की अनुमति देने के लिए धन्यवाद देती है। कुछ चित्र जॉन सुरेश कुमार, सायनोडिकल बोर्ड ऑफ़ सोशल सर्विस; जे.जॉन, लेबर फ़ाइल, नयी दिल्ली; वी. सुरेश, चेन्नई और आर. सी. दास, केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली के प्रति उनके योगदान के लिए आभार व्यक्त करती है।

संपूर्ण पांडुलिपि को जाँचने-परखने तथा उनमें वांछित परिवर्तनों के लिए सुझाव देने हेतु वंदना आर. सिंह, *सलाहकार संपादक* को परिषद् धन्यवाद देती है।

इस पुस्तक के चरणबद्ध विकास में सहयोग के लिए परिषद् *डी.टी.पी. ऑपरेटर* विजय कुमार, सज्जाद हैदर अंसारी तथा ममता; *कॉपी एडीटर* सुप्रिया गुप्ता तथा राजेश रामजीत राय; *प्रूफ़ रीडर* विभोर सिंह तथा श्रेष्ठा; कंप्यूटर स्टेशन *इंचार्ज* दिनेश कुमार के प्रति भी आभार व्यक्त करती है। हम प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. का भी उनके सहयोग के लिए आभार व्यक्त करते हैं।

विषय-सूची

आमुख		*iii*
शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए दो शब्द		*v*
1.	समाजशास्त्र एवं समाज	1
2.	समाजशास्त्र में प्रयुक्त शब्दावली, संकल्पनाएँ एवं उनका उपयोग	27
3.	सामाजिक संस्थाओं को समझना	46
4.	संस्कृति तथा समाजीकरण	71
5.	समाजशास्त्र–अनुसंधान पद्धतियाँ	93

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को –

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

अध्याय 1

समाजशास्त्र एवं समाज

1

परिचय

हम शुरुआत करते हैं कुछ सुझावों से जो प्रायः आप जैसे युवा विद्यार्थियों के सम्मुख रखे जाते हैं। एक सुझाव प्रायः दिया जाता है कि 'मेहनत से पढ़ाई करोगे तो जीवन में सफलता पाओगे।' दूसरा सुझाव यह होता है कि 'यदि आप इस विषय अथवा विषयों के समूह की पढ़ाई करेंगे तो भविष्य में अच्छी नौकरी मिलने की ज़्यादा संभावना रहेगी।' तीसरा सुझाव इस प्रकार हो सकता है कि 'किसी लड़के के लिए यह विषय ज़्यादा उपयुक्त नहीं दिखता' अथवा 'एक लड़की के तौर पर क्या आपके विषयों का चुनाव व्यावहारिक है?' चौथा सुझाव, 'आपके परिवार को आपकी नौकरी की शीघ्र आवश्कता है तो ऐसा व्यवसाय न चुनें जिसमें बहुत ज़्यादा समय लगता हो' अथवा 'आपको अपने पारिवारिक व्यवसाय में कार्य करना है तो आप इस विषय को पढ़ने की इच्छा क्यों रखते हैं?'

आइए, हम इन सुझावों पर गौर करें। क्या आप सोचते हैं कि पहला सुझाव बाकी तीन सुझावों का खंडन करता है? क्योंकि पहला सुझाव दर्शाता है कि यदि आप कठिन परिश्रम करेंगे, तो आप अच्छा कार्य करेंगे और अच्छी नौकरी पाएँगे। इसका दारोमदार स्वयं पर है। दूसरा सुझाव यह दर्शाता है कि आपके व्यक्तिगत प्रयास के अलावा नौकरी का एक बाज़ार है और वह बाज़ार यह निश्चित करता है कि किस विषय की पढ़ाई करने से नौकरी के अवसर ज़्यादा हैं या कम है। तीसरा और चौथा सुझाव इस विषय को और भी जटिल बना देता है। यहाँ केवल हमारे व्यक्तिगत प्रयास और नौकरी का बाज़ार ही नहीं बल्कि लिंग, परिवार और सामाजिक परिवेश भी मायने रखते हैं।

यद्यपि व्यक्तिगत प्रयासों का बहुत अधिक महत्त्व है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वे परिणाम को निश्चित करें। जैसाकि हम देखते हैं कुछ अन्य सामाजिक कारक भी हैं जो परिणाम को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमने केवल 'नौकरी का बाज़ार', 'सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि' एवं 'लिंग' का ज़िक्र किया है। क्या आप अन्य कारकों के बारे में सोच

सकते हैं? हम पूछ सकते हैं, "यह कौन निश्चित करता है कि एक अच्छी नौकरी क्या है?" क्या 'एक अच्छी नौकरी' के बारे में सभी समाजों की सोच एक जैसी है? क्या इसका पैमाना पैसा है? अथवा सम्मान या सामाजिक मान्यता या व्यक्तिगत संतुष्टि, जो एक नौकरी की हैसियत का निर्धारण करते हैं? क्या संस्कृति एवं सामाजिक मानक की भी इसमें कोई भूमिका होती है?

प्रत्येक विद्यार्थी को तरक्की हेतु मेहनत से अध्ययन अवश्य करना चाहिए। लेकिन वह कितना अच्छा कर पाता है यह सामाजिक कारकों के एक पूरे समुच्चय द्वारा निर्धारित होता है। नौकरी का बाज़ार अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों से परिभाषित होता है। अर्थव्यवस्था की ज़रूरतें भी पुनः सरकार की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों पर निर्भर रहती हैं। किसी विद्यार्थी की नौकरी के अवसर इन विशिष्ट राजनीतिक-आर्थिक आँकड़ों के साथ-साथ उसके परिवार की सामाजिक पृष्ठभूमि से भी प्रभावित होते हैं। यहाँ से हमें इस बात का प्रारंभिक ज्ञान मिलता है कि किस प्रकार समाजशास्त्र मानव समाज का एक अंतःसंबंधित समग्र के रूप में अध्ययन करता है, और किस तरह समाज और व्यक्ति एक दूसरे से अंतःक्रिया करते हैं। उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में, विषयों के चुनाव की समस्या विद्यार्थी का व्यक्तिगत मामला है। इसके बावजूद अधिकांश विद्यार्थी इस समस्या से प्रभावित रहते हैं, अतः प्रत्यक्ष है कि यह एक व्यापक जनहित का मुद्दा है। समाजशास्त्र का एक कार्य व्यक्तिगत समस्या और जनहित मुद्दे के बीच संबंध को स्पष्ट करना है। यह इस अध्याय की पहली विषय-वस्तु है।

हम यह पहले ही देख चुके हैं कि एक 'अच्छी नौकरी' का अर्थ भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न है। किसी व्यक्ति के लिए, किसी नौकरी की सामाजिक प्रतिष्ठा कितनी है, अथवा नहीं है यह उस व्यक्ति के 'प्रासंगिक समाज' की संस्कृति पर निर्भर करता है। 'प्रासंगिक समाज' का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ है वह समाज जिस से वह संबंधित है? व्यक्ति किस समाज से संबंध रखता है? क्या यह पास-पड़ोस है? क्या यह समुदाय है? क्या यह जाति या जनजाति है? क्या यह उसके माता-पिता का व्यापारिक दायरा है? क्या यह राष्ट्र है? इस प्रकार इस अध्याय का दूसरा बिंदु यह है कि वर्तमान समय में व्यक्ति कैसे एक से अधिक समाजों से जुड़ा हुआ है और समाज कैसे असमान होते हैं।

तीसरा, यह अध्याय इसका परिचय देता है कि समाजशास्त्र में समाज का विधिवत अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन दार्शनिक और धार्मिक अनुचिंतन एवं साथ ही समाज के रोज़मर्रा के सामान्य प्रेक्षण से एकदम अलग है। चौथी बात, समाज के अध्ययन का यह अलग तरीका ज़्यादा अच्छी तरह से समझा जा सकता है, यदि हम पीछे मुड़कर बौद्धिक विचारों एवं भौतिक स्थितियों पर ऐतिहासिक दृष्टि डालें जिसमें समाजशास्त्र का जन्म एवं विकास हुआ। ये विचार एवं भौतिक विकास मुख्यतः पाश्चात्य थे परंतु उनके परिणाम विश्वव्यापी थे। पाँचवें, हम इस विश्वव्यापी पक्ष एवं तरीके को देखते हैं जिसमें भारत में समाजशास्त्र का आगमन हुआ। यह याद रखना

महत्त्वपूर्ण है कि जिस प्रकार हम में से प्रत्येक की अपनी अलग एक जीवनी है उसी तरह एक विषय की भी जीवनी होती है। विषय के इतिहास को समझने से विषय को समझने में सहायता मिलती है। अंत में समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र एवं अन्य विषयों से इसके संबंधों की चर्चा की गई है।

2

समाजशास्त्रीय कल्पनाएँ : व्यक्तिगत समस्याएँ एवं जनहित के मुद्दे

हमने अपनी शुरुआत कुछ सुझावों के एक समुच्चय के साथ की थी जिसने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि व्यक्ति और समाज एक

क्रियाकलाप-1

मिल्स के उद्धरण को ध्यानपूर्वक पढ़ें। तब अगले पृष्ठ पर दिए गए दृश्य और रिर्पोट की जाँच करें। क्या आपने ध्यान दिया कि एक गरीब और गृहविहीन दंपति का दृश्य कैसा है? समाजशास्त्रीय कल्पना गृहविहीनता को समझने और इसकी एक जनहित मुद्दे की तरह व्याख्या करने में सहायता करती है। क्या आप गृहविहीनता के कारणों की पहचान कर सकते हैं? आपकी कक्षा के विभिन्न समूह इसके संभावित कारणों पर सूचनाएँ एकत्र कर सकते हैं। उदाहरणतया; रोज़गार संभावनाएँ, गाँवों से शहरों में प्रवसन आदि। इन पर चर्चा कीजिए। क्या आपने ध्यान दिया कि किस प्रकार राज्य गृहविहीनता को एक जनहित मुद्दे के रूप में लेता है, जिसके लिए इंदिरा आवास योजना सरीखे ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है?

समाजशास्त्रीय कल्पना हमें इतिहास और जीवनकथा को समझने एवं समाज में इन दोनों के संबंध को समझाने में सहायता करती है। यही इसका मुख्य कार्य है और इसका वायदा भी... शायद सबसे अधिक परिणामदायक विभेद जिसके द्वारा समाजशास्त्रीय कल्पना कार्य करती है, वह 'व्यक्तिगत समस्याओं' और 'सामाजिक संरचना के जनहित के मुद्दे' के बीच है... जब किसी को व्यक्तिगत या अपने आस-पास के लोगों के साथ संबंधों में कठिनाइयाँ हो जाती हैं; तब वह उसे स्वयं प्रत्यक्ष व निजी रूप से ज्ञात सीमित सामाजिक दायरे में सुलझाता है... इन मुद्दों का संबंध व्यक्ति के निजी जीवन तथा स्थानीय वातावरण से परे होता है।

समकालीन इतिहास के तथ्य पुरुषों और स्त्रियों की सफलता और असफलता के तथ्य भी हैं। जब एक समाज का औद्योगीकरण होता है, एक किसान श्रमिक बन जाता है; एक सामंत समाप्त हो जाता है या व्यवसायी बन जाता है। जब कोई वर्ग उठता है या गिरता है, एक व्यक्ति रोज़गार युक्त अथवा बेरोज़गार हो जाता है; जब विनियोग की दर ऊपर-नीचे जाती है, आदमी का मन उछलता है या टूट जाता है। जब युद्ध होता है, एक बीमा एजेंट रॉकेटलांचर बन जाता है; एक स्टोर का क्लर्क राडार मैन बन जाता है; एक पत्नी अकेली रह जाती है; एक बालक पिता के बगैर बड़ा होता है। एक व्यक्ति की ज़िंदगी हो या एक समाज का इतिहास, दोनों को जाने बिना समझा नहीं जा सकता है... (मिल्स 1959)।

एक गृहविहीन दंपति

वर्ष 1999-2000 से आरंभ हुई इंदिरा आवास योजना सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय (एम.ओ.आर.डी.) तथा भवन एवं शहरी विकास निगम (हुडको) द्वारा संचालित एक विशाल योजना है, जो गरीब और गृहविहीन लोगों के लिए मुफ़्त आवास मुहैया कराएगी। क्या आप ऐसे अन्य मुद्दे बता सकते हैं जो व्यक्तिगत समस्याओं और जनहित के मुद्दों में संबंध दर्शाते हैं?

दूसरे से परस्पर किस प्रकार संबंधित हैं। यह एक ऐसा बिंदु है जिस पर समाजशास्त्री पीढ़ियों से विचार विमर्श करते आ रहे हैं। सी. राइट मिल्स समाजशास्त्रीय कल्पनाओं पर अपनी दृष्टि मुख्यत: इस बात को सुलझाने पर टिकाते हैं कि किस तरह व्यक्तिगत और जनहित परस्पर संबंधित हैं।

3

समाजों में बहुलताएँ एवं असमानताएँ

समकालीन विश्व में, एक प्रकार से देखा जाए तो हम एक से ज़्यादा 'समाजों' से जुड़े हुए हैं। जब हम विदेशियों के बीच 'हमारे समाज' की बात करते है तो हमारा मतलब 'भारतीय समाज' से हो सकता है लेकिन भारतीयों के बीच 'हमारे समाज' को भाषा, समुदाय, धर्म या जाति अथवा जनजाति के संदर्भ में भी लिया जा सकता है।

यह विविधता इस बात का निर्णय करने में कठिनाई पैदा करती है कि हम किस समाज की बात कर रहे हैं। लेकिन शायद लगता है कि समाजों का खाका खींचने की समस्या अकेले समाजशास्त्रियों की ही नहीं है, जैसा कि नीचे दी गई टिप्पणी से प्रकट होता है।

अपनी फ़िल्मों में क्या दिखाया जाए इस पर चर्चा करते हुए मशहूर भारतीय फ़िल्मकार सत्यजित राय हैरानी से कहते हैं–

> आप अपनी फ़िल्मों में क्या रखेंगे? आप क्या छोड़ सकते हैं? क्या आप शहर को पीछे छोड़कर गाँव में जाएँगे जहाँ विशाल चारागाहों में गायें चरती हैं और चरवाहे बाँसुरी बजाते हैं? आप यहाँ एक साफ़-सुथरी एवं ताज़ातरीन फ़िल्म बना सकते हैं जिसमें एक नाविक के गीतों की सी मोहक लय होगी।
> अथवा आप इतिहास में पीछे महाकाव्यों में जाएँगे, जहाँ दैत्यों और देवों ने महान संग्राम में

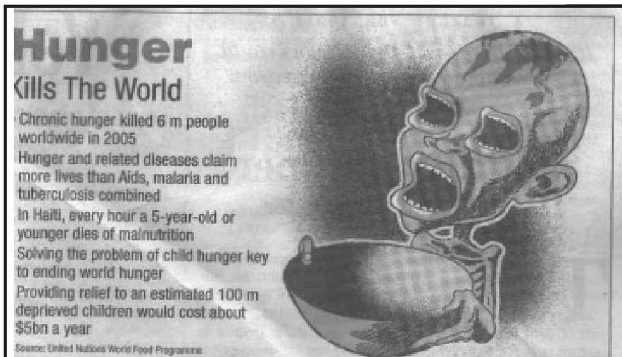

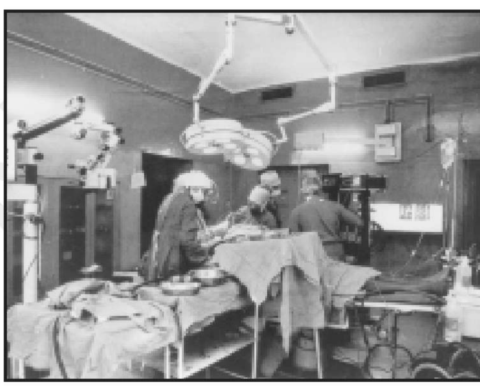

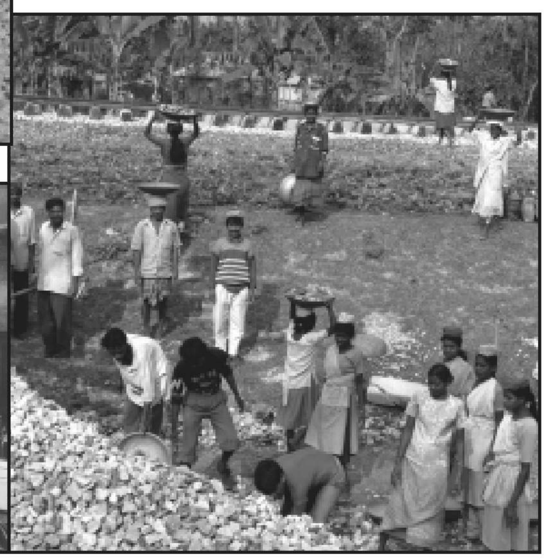

दृश्यों पर चर्चा कीजिए

ये किस प्रकार की बहुलताएँ और असमानताएँ दर्शाते हैं?

हिस्सा लिया था, जिसमें भाइयों ने भाइयों का संहार किया था...

अथवा आप वहीं ठहरे रहेंगे जहाँ आप हैं, वर्तमान में, यहीं इसी विकट, भीड़-भाड़, चकाचौंध भरे शहर के बीचों-बीच और इसके कोलाहल और दृश्यों और परिवेश के विरोधाभासों से स्वर मिलाने का प्रयास करेंगे?

यह समाजशास्त्र के सम्मुख मुख्य प्रश्न है कि समाज में किस चीज़ पर ध्यान केंद्रित किया जाए। हम सत्यजित राय की टिप्पणी पर पुनः जाते हैं तो स्तब्ध होते हैं कि क्या उनके द्वारा किया गया गाँव का चित्रण रोमांटिक है? एक समाजशास्त्री के नज़रिए से गाँव के एक दलित के नीचे दिए गए चित्रण की इससे तुलना करना उल्लेखनीय होगा–

जब मैंने उसे पहली बार देखा वह गाँव की छप्पर की छत वाली चाय की दुकान के सामने धूल भरी सड़क पर बैठा था, जानबूझकर अपना गिलास और प्लेट अपने बगल में रखे हुए जो दुकानदार के लिए मूक संकेत था कि अछूत को चाय खरीदनी है। मुली एक 40 वर्षीय पान से मैले हुए दाँतों वाला मरियल-सा व्यक्ति था जिसके लंबे बाल पीछे की तरफ़ लटके हुए थे (फ्रीमैन 1978)।

क्रियाकलाप-2

भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण बताता है कि सफ़ाई सुविधाएँ सिर्फ़ 28 प्रतिशत लोगों को प्राप्त हैं। सामाजिक असमानता के अन्य संकेतकों मसलन शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार इत्यादि के बारे में मालूम कीजिए।

अमर्त्य सेन का उद्धरण शायद इसका ज़्यादा अच्छी तरह वर्णन करेगा कि किस प्रकार असमानता समाजों के बीच केंद्रीय बिंदु है–

कुछ भारतीय अमीर हैं, अधिकांश नहीं हैं। कुछ बहुत अच्छी तरह शिक्षित हैं; अन्य निरक्षर है। कुछ विलासिता की ज़िंदगी बसर करते हैं, जबकि दूसरे थोड़े से पारिश्रमिक के बदले कठोर परिश्रम करते हैं। कुछ राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होते हैं; लेकिन दूसरे किसी भी चीज़ को प्रभावित नहीं कर सकते। कुछ के पास ज़िंदगी में आगे बढ़ने के लिए अनेक अवसर हैं; जबकि अन्य के पास अवसरों का नितांत अभाव है। कुछ के प्रति पुलिस का व्यवहार सम्मानजनक रहता है; जबकि अन्य कुछ के लिए अत्यधिक असम्मानजनक। ये असमानता के कुछ विभिन्न प्रकार हैं और इनमें से प्रत्येक के लिए गंभीर चिंतन की आवश्यकता है (अमर्त्य सेन 2005 : 210-11)।

4

समाजशास्त्र का परिचय

समाज का एक अंतःसंबंधित समग्र के रूप में अध्ययन करने के समाजशास्त्र के मुख्य सरोकार एवं समाजशास्त्रीय कल्पनाओं के बारे में आपको पहले ही परिचय दिया जा चुका है। व्यक्तिगत पसंद और नौकरी के बाज़ार पर हमारी परिचर्चा से पता चलता है कि किस प्रकार आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाएँ अंतःसंबंधित हैं और किस प्रकार एक व्यक्ति इससे बँधा हुआ भी है तथापि कुछ सीमा

तक इसको बदल भी सकता है। अगले कुछ अध्याय विभिन्न संस्थाओं और साथ ही साथ संस्कृति पर आधारित होंगे। ये समाजशास्त्र की कुछ प्रमुख शब्दावली एवं संकल्पनाओं पर भी केंद्रित होंगे, जिससे समाज को समझने में आपको मदद मिलेगी क्योंकि समाजशास्त्र मनुष्य के सामाजिक जीवन, समूहों और समाजों का अध्ययन है। एक सामाजिक प्राणी की तरह स्वयं हमारा व्यवहार इसकी विषय-वस्तु है।

समाजशास्त्र ऐसा कार्य करने वाला पहला विषय नहीं है। लोगों ने हमेशा से उस समाज और समूह को देखा और समझा है जिसमें वे रहते हैं। यह सभी सभ्यताओं और युगों के दार्शनिकों, धार्मिक गुरुओं और विधिवेत्ताओं की पुस्तकों से स्पष्ट होता है। अपने जीवन और अपने समाज के बारे में सोचने वाला मानव स्वभाव केवल दार्शनिकों एवं सामाजिक विचारकों तक सीमित नहीं है। हम सभी के अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी के बारे में और दूसरों की ज़िंदगी के बारे में भी अपने-अपने विचार रहते हैं और इसी तरह अपने समाज और दूसरे समाजों के बारे में भी। ये रोज़ाना की हमारी धारणाएँ और हमारी सामान्य बौद्धिक समझ ही है जिसके अनुसार हम अपना जीवन जीते हैं। तो भी एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का एक समाज के बारे में प्रेक्षण एवं विचार दार्शनिक अनुचिंतनों एवं सामान्य बौद्धिक समझ से हटकर है।

मानव व्यवहार में क्या नैतिक है और क्या अनैतिक, रहन-सहन के वांछित तरीकों एवं एक अच्छे समाज के बारे में दार्शनिक तथा धार्मिक विचारक अकसर निरीक्षण करते रहते हैं। समाजशास्त्र का सरोकार भी मानकों एवं मूल्यों के प्रति है। लेकिन इसकी मुख्य दृष्टि इन मानकों एवं मूल्यों से परे उन उद्देश्यों पर है जिसका लोगों को अनुसरण करना चाहिए। इसका सरोकार उस तरीके से है जिसके तहत वे वास्तविक समाजों में कार्य करते हैं। (अध्याय 3 में आप देखेंगे कि किस प्रकार धर्म का समाजशास्त्र ईश्वरमीमांसीय अध्ययन से अलग है)। समाजों का आनुभविक अध्ययन समाजशास्त्रियों के कार्य का एक अहम हिस्सा हैं। लेकिन इस बात का यह अर्थ कदापि नहीं है कि समाजशास्त्र का मूल्यों के प्रति कोई सरोकार नहीं है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि जब एक समाजशास्त्री एक समाज का अध्ययन करता है तब वह जानकारियाँ इकट्ठा करने और प्रेक्षण करने को उत्सुक होता है, चाहे वह उसकी निजी पसंद के प्रतिकूल हो।

इसको स्पष्ट करने के लिए पीटर बर्जर एक असामान्य लेकिन प्रभावकारी तुलना पेश करते हैं–

> किसी राजनीतिक या सैनिक संघर्ष में विरोधी पक्ष के जासूसी तंत्र द्वारा इस्तेमाल की गई सूचनाओं को हथियाना काफ़ी फ़ायदेमंद होता है। लेकिन इसका कारण यही है कि एक सफल जासूसी तंत्र की सूचनाएँ पूर्वाग्रहों से मुक्त होती हैं। यदि कोई जासूस अपनी रिपोर्टिंग अपने अधिकारियों की विचारधारा एवं महत्त्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखकर करता है तो उसकी रिपोर्ट न सिर्फ़ अपने पक्ष के लिए अनुपयोगी होगी बल्कि विरोधी पक्ष के लिए भी, यदि वह उसे हथियाना चाहे... एक समाजशास्त्री भी काफ़ी

> मायने में ऐसा ही एक जासूस है। उसका काम है किसी भी निश्चित क्षेत्र में अधिक से अधिक शुद्ध रिपोर्ट तैयार करना, जितना कि वह कर सकता है (बर्जर 1963 :16–17)।

क्या इसका यह अर्थ निकलता है कि समाजशास्त्री की अपने अध्ययन के उद्देश्यों के बारे में जानने अथवा उस काम के प्रति, जिसके लिए समाजशास्त्रीय जानकारियाँ जुटाई जा रही हैं, कोई सामाजिक ज़िम्मेदारी नहीं है? उसकी ज़िम्मेदारी भी उतनी ही है जितनी समाज के एक नागरिक की होती हैं। लेकिन यह पूछताछ समाजशास्त्रीय पूछताछ नहीं है। यह तो एक जीवविज्ञानी के जैविकीय ज्ञान की तरह है जिसका उपयोग या तो स्वस्थ करने के लिए या खत्म करने के लिए किया जा सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवविज्ञानी उस ज़िम्मेदारी से मुक्त है जिसके लिए वह कार्य कर रहा है। परंतु यह एक जैविकीय प्रश्न नहीं है।

समाजशास्त्र अपने आरंभिक काल से ही स्वयं को विज्ञान की तरह समझता है। समाजशास्त्र प्रचलित सामान्य बौद्धिक प्रेक्षणों या दार्शनिक अनुचिंतनों या ईश्वरवादी व्याख्यानों से हटकर वैज्ञानिक कार्यविधियों से बँधा हुआ है। इसका अर्थ है कि जिन कथनों पर समाजशास्त्री पहुँचता है वह कथन साक्ष्य के निश्चित नियमों के प्रेक्षणों द्वारा प्राप्त किए हुए होने चाहिए ताकि दूसरे व्यक्ति उनकी जाँच कर सकें या उनकी जानकारियों के विकास हेतु उन्हें दोहरा सकें। समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञान तथा मानवविज्ञान के अंतर पर और परिमाणात्मक तथा गुणात्मक अनुसंधानों के अंतर पर पर्याप्त बहस हो चुकी है। हमें यहाँ इस विवाद में नहीं पड़ना हैं। लेकिन यहाँ जो बात प्रासंगिक है, वह यह है कि समाजशास्त्र को अपने प्रेक्षणों और विश्लेषणों में कुछ निश्चित नियमों का पालन करना होता है ताकि दूसरों के द्वारा उसकी जाँच की जा सके। अगले खंड में हम समाजशास्त्रीय ज्ञान और सामान्य बौद्धिक ज्ञान की तुलना करने जा रहे हैं जो एक बार फिर इस बात पर बल देता है कि समाजशास्त्र जिस तरह से समाज का प्रेक्षण करता है उसमें पद्धतियों की भूमिका, प्रक्रियाएँ और नियमों का कितना महत्त्व है। इस पाठ्यपुस्तक का 5वाँ अध्याय आपको बताएगा कि समाजशास्त्री क्या करते हैं और वे किस तरह समाज का अध्ययन करते हैं। समाजशास्त्र और सामान्य बौद्धिक ज्ञान के बीच के अंतरों का विस्तृत वर्णन समाजशास्त्रीय उपागम एवं पद्धति के बारे में एक स्पष्ट विचार देने में सहायता करेगा।

5

समाजशास्त्र और सामान्य बौद्धिक ज्ञान

हम देख चुके हैं कि किस तरह समाजशास्त्रीय ज्ञान ईश्वरमीमांसीय और दार्शनिक प्रेक्षणों से अलग है। इसी प्रकार समाजशास्त्र सामान्य बौद्धिक प्रेक्षणों से अलग है। सामान्य बौद्धिक वर्णन सामान्यत: उन पर आधारित होते हैं जिन्हें हम प्रकृतिवादी और/या व्यक्तिवादी वर्णन कह सकते हैं। व्यवहार का एक प्रकृतिवादी वर्णन इस मान्यता पर निर्भर करता है कि एक

क्रियाकलाप-3

गरीबी का एक उदाहरण नीचे दिया गया है और हमने गृहविहीन व्यक्तियों वाली अपनी चर्चा में भी इस बात का हलका-सा उल्लेख किया है। आप अन्य मुद्दों के बारे में सोचें कि वे प्रकृतिवादी और समाजशास्त्री तरीके से कैसे वर्णित किए जा सकते हैं।

व्यक्ति व्यवहार के 'प्राकृतिक' कारणों की पहचान कर सकता है।

अतः समाजशास्त्र सामान्य बौद्धिक प्रेक्षणों एवं विचारों तथा साथ ही साथ दार्शनिक विचारों दोनों से ही अलग है। यह हमेशा या सामान्यतः भी चमत्कारिक परिणाम नहीं देता। लेकिन अर्थपूर्ण और असंदिग्ध संपर्कों तक केवल सामान्य संपर्कों की छानबीन द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। समाजशास्त्रीय ज्ञान में बहुत अधिक प्रगति हुई है ज़्यादा प्रगति तो सामान्य रूप से हुई परंतु कभी-कभार नाटकीय उद्भवों से भी प्रगति हुई है।

समाजशास्त्र में संकल्पनाओं, पद्धतियों और आँकड़ों का एक पूरा तंत्र है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि यह किस तरह संयोजित है। यह सामान्य बौद्धिक ज्ञान से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता। सामान्य बौद्धिक ज्ञान अपरावर्तनीय

व्याख्या	प्रकृतिवादी	समाजशास्त्रीय
गरीबी	लोग गरीब इसलिए हैं क्योंकि वे काम से जी चुराते हैं, 'समस्याग्रस्त परिवारों' से आते हैं, परिवार का उचित बजट बनाने में अयोग्य हैं, बुद्धिमत्ता की कमी है एवं कार्य के लिए स्थानांतरण से डरते हैं।	समकालीन गरीबी का कारण वर्ग समाज में असमानता की संरचना है और वे लोग इससे ज़्यादा प्रभावित होते हैं जिनकी कार्य की अनियमितता दीर्घकालिक एवं मज़दूरी कम है (जयराम 1987:3)।

असंदिग्ध संपर्क?

बहुत से समाजों में, जिसमें भारत के बहुत सारे भाग भी शामिल हैं, उत्तराधिकार और वंशानुक्रम की रेखा पिता से पुत्र को जाती है। इसे पितृवंशीय व्यवस्था के रूप में जाना जाता है। इसे ध्यान में रखते हुए कि औरतों को संपत्ति में अधिकार मिलने की प्रवृत्ति अत्यधिक क्षीण है, भारत सरकार ने कारगिल युद्ध के बाद यह निर्णय किया कि भारतीय सैनिकों की मृत्यु पर मिलने वाली क्षतिपूर्ति की धनराशि उनकी विधवाओं को मिलनी चाहिए।

निश्चित रूप से सरकार ने इस फ़ैसले के अवांछित परिणामों का पूर्वानुमान नहीं लगाया। इस कारण बहुत सी विधवाओं को अपने देवरों (पति के भाइयों) के साथ शादी करने के लिए मज़बूर किया गया। कुछ मामलों में वह देवर (बाद में पति) अल्पवयस्क था जबकि भाभी (बाद में पत्नी) युवती थी। यह इस बात को निश्चित करने के लिए होता था कि क्षतिपूर्ति की धनराशि मृतक के परिवार में ही रहे। क्या आप इस तरह के अवांछित परिणाम वाले किसी अन्य सामाजिक कार्य अथवा ऐसे ही किसी शासकीय फ़ैसले के बारे में सोच सकते हैं?

है क्योंकि यह अपने उद्‌गम के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछता है। या दूसरे शब्दों में यह अपने आप से यह नहीं पूछता–"मैं यह विचार क्यों रखता हूँ?" एक समाजशास्त्री को अपने स्वयं के बारे में तथा अपने किसी भी विश्वास के बारे में प्रश्न पूछने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए, चाहे वह विश्वास कितना भी प्रिय क्यों न हो–"क्या वास्तव में ऐसा है?" समाजशास्त्र के दोनों ही उपागम, व्यवस्थित एवं प्रश्नकारी, वैज्ञानिक खोज की एक विस्तृत परंपरा से निकले हैं। वैज्ञानिक कार्यविधियों के इस महत्त्व को तभी समझा जा सकता है, जब हम अतीत की तरफ़ लौटें और उस समय की सामाजिक परिस्थिति को समझें जिसमें समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का उद्‌भव हुआ था, क्योंकि आधुनिक विज्ञान में हुए विकासों का समाजशास्त्र पर गहरा प्रभाव पड़ा था। चलिए हम संक्षिप्त रूप में देखें कि समाजशास्त्र की रचना में बौद्धिक विचारों की भूमिका कहाँ तक है।

6

बौद्धिक विचार जिनकी समाजशास्त्र की रचना में भूमिका है

प्राकृतिक विकास के वैज्ञानिक सिद्धांतों और प्राचीन यात्रियों द्वारा पूर्व आधुनिक सभ्यताओं की खोज से प्रभावित होकर उपनिवेशी प्रशासकों, समाजशास्त्रियों एवं सामाजिक मानवविज्ञानियों ने समाजों के बारे में इस दृष्टिकोण से विचार किया कि उनका विभिन्न प्रकारों में वर्गीकरण किया जाए ताकि सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों को पहचाना जा सके। ये लक्षण उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभिक समाजशास्त्रियों जैसे आगस्त कोंत, कार्ल मार्क्स एवं हरबर्ट स्पेंसर के कार्यों में पुनः दृष्टिगोचर होते हैं। अतः इस बात के प्रयास किए गए कि उन बातों के आधार पर विभिन्न तरह के समाजों का वर्गीकरण किया जाए। उदाहरण के लिए–

- आधुनिक काल से पहले के समाजों के प्रकार, जैसे शिकारी टोलियाँ एवं संग्रहकर्ता, चरवाहे एवं कृषक, कृषक एवं गैर–औद्योगिक सभ्यताएँ।
- आधुनिक समाजों के प्रकार, जैसे औद्योगीकृत समाज।

इस प्रकार के क्रमिक विकास का दर्शन यह मानता था कि पश्चिमी संसार आवश्यक रूप से ज़्यादा प्रगतिशील एवं सभ्य था। गैर–पश्चिमी समाज को अशिष्ट और कम विकसित समझा जाता था। भारतीय औपनिवेशिक अनुभव को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। भारतीय समाजशास्त्र में भी इसी तरह के तनाव को देखा जा सकता है 'बहुत पीछे इतिहास में अंग्रेज़ी उपनिवेशवाद के समय में जाइए और इसका बुद्धिजीवी तथा सिद्धांतवादी जवाब हैं...' (सिंह 2004:19)। शायद इसी पृष्ठभूमि के कारण ही भारतीय समाजशास्त्र खासतौर पर विचारशील रहा है और यही इसके व्यवहार में भी दिखता है (चौधरी 2003)। अगली पुस्तक 'समाज का बोध' (एन.सी.ई.आर.टी., 2006) में आप भारतीय समाजशास्त्रीय विचार, उसके सरोकारों और इसके वास्तविक व्यवहार के बारे में विस्तार से जानेंगे।

डार्विन के जीव विकास के विचारों का आरंभिक समाजशास्त्रीय विचारों पर दृढ़ प्रभाव

था। समाज की प्रायः जीवित जैववाद से तुलना की जाती थी और इसके क्रमबद्ध विकास को चरणों में तलाशने के प्रयास किए जाते थे जिनकी जैविकी जीवन से तुलना की जा सकती थी। समाज को व्यवस्था के भागों के रूप में देखने के तरीके ने, जिसमें प्रत्येक भाग एक खास कार्य निष्पादन में रत हो, सामाजिक संस्थाओं, जैसे परिवार या स्कूल एवं संरचनाओं जैसे स्तरीकरण के अध्ययन को बहुत प्रभावित किया। इसकी चर्चा हमने यहाँ इसलिए की है क्योंकि उन बौद्धिक विचारों का, जिनकी समाजशास्त्र की रचना में महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इससे गहरा संबंध है कि किस प्रकार समाजशास्त्र आनुभविक वास्तविकता का अध्ययन करता है।

ज्ञानोदय, एक यूरोपीय बौद्धिक आंदोलन जो सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों एवं अट्ठारहवीं शताब्दी में चला, कारण और व्यक्तिवाद पर बल देता है। उस वक्त वैज्ञानिक जानकारी भी उन्नत अवस्था में थी और साथ ही एक बढ़ता दृढ़ विश्वास यह भी था कि प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों द्वारा मानवीय पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है और करना भी चाहिए। उदाहरणार्थ; गरीबी, जो अभी तक एक 'प्राकृतिक प्रक्रिया' के रूप में जानी जाती थी, उसे 'सामाजिक समस्या' के रूप में देखना आरंभ हुआ, जो कि मानवीय उपेक्षा अथवा शोषण का परिणाम है। इसलिए गरीबी को समझा जा सकता है और उसका निराकरण हो सकता है। इसके अध्ययन का एक तरीका यह था कि एक सामाजिक सर्वेक्षण किया जाए और यह इस विश्वास पर आधारित हो कि मानवीय प्रक्रियाओं को मापा जा सकता है और इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। सामाजिक सर्वेक्षण के बारे में चर्चा 5वें अध्याय में की जाएगी।

प्रारंभिक आधुनिक काल के विचारक इस बात से सहमत थे कि ज्ञान में वृद्धि से सभी सामाजिक बुराइयों का समाधान संभव है। उदाहरण के तौर पर फ्रांसीसी विद्वान आगस्त कोंत, (1789–1857) जिनको कि समाजशास्त्र का संस्थापक समझा जाता है, का विश्वास था कि समाजशास्त्र मानव कल्याण में योगदान करेगा।

7

भौतिक मुद्दे जिनकी समाजशास्त्र की रचना में भूमिका है

औद्योगिक क्रांति एक नए गतिशील आर्थिक क्रियाकलाप—पूँजीवाद पर आधारित थी। औद्योगिक उत्पादन की उन्नति के पीछे यही पूँजीवादी व्यवस्था एक प्रमुख शक्ति थी। पूँजीवाद में नयी अभिवृत्तियाँ एवं संस्थाएँ सम्मिलित थीं। उद्यमी निश्चित और व्यवस्थित मुनाफ़े की आशा से प्रेरित थे। बाज़ारों ने उत्पादनकारी जीवन में प्रमुख साधन की भूमिका अदा की। और माल, सेवाएँ एवं श्रम वस्तुएँ बन गईं जिनका निर्धारण तार्किक गणनाओं के द्वारा होता था।

नयी अर्थव्यवस्था पहले वाली अर्थव्यवस्था से एकदम अलग थी। इंग्लैंड औद्योगिक क्रांति का केंद्र था। औद्योगीकरण द्वारा आया परिवर्तन कितना असरकारी था इसे समझने के लिए हम औद्योगीकरण से पूर्व की इंग्लैंड की ज़िंदगी पर सरसरी नज़र डालते हैं। औद्योगीकरण से पहले, अंग्रेज़ों का मुख्य पेशा खेती करना एवं कपड़ा

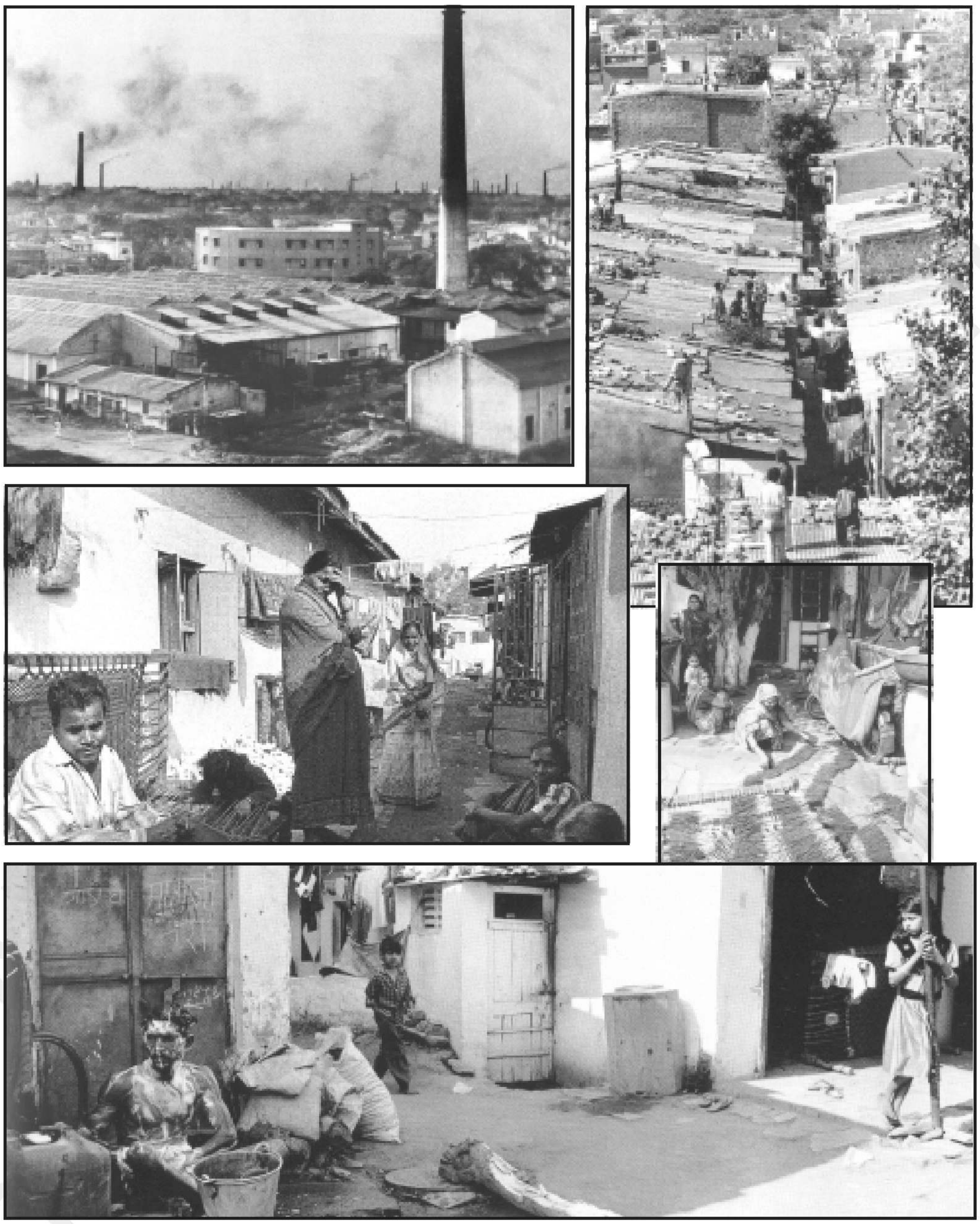

आस-पड़ोस के कामकाजी वर्ग से गंदी बस्तियों तक

बुनना था। अधिकांश लोग गाँवों में रहते थे। अपने भारतीय गाँवों की तरह ही वहाँ भी कृषक एवं भू-स्वामी, लोहार एवं चमड़ा श्रमिक, जुलाहे एवं कुम्हार, चरवाहे और मद्यनिर्माता थे। समाज छोटा था। यह स्तरीकृत था अर्थात विभिन्न लोगों की प्रस्थिति एवं उनकी वर्ग स्थिति स्पष्ट परिभाषित थी। सभी परंपरागत समाजों की तरह यह भी नज़दीकी आपसी व्यवहार की विशेषता रखता था। औद्योगीकरण के साथ ही सभी विशेषताएँ बदल गईं।

नयी व्यवस्था का एक प्रमुख मूल पक्ष था श्रम की प्रतिष्ठा कम होना, शिल्प संघ, गाँव एवं परिवार के सुरक्षित स्थानों से कार्य का अलग होना। रूढ़िवादी एवं परिवर्तनवादी दोनों ही तरह के चिंतक सामान्य श्रमिकों की प्रस्थिति की गिरावट को देखकर भयभीत थे, परंतु कुशल कारीगरों की स्थिति अलग थी।

नगरीय केंद्रों का विकास और विस्तार हुआ। ऐसा नहीं था कि पहले शहर नहीं थे। लेकिन औद्योगीकरण से पहले उनका स्वरूप अलग था। औद्योगिक शहरों ने एक बिलकुल नए नगरीय संसार को जन्म दिया। इसकी निशानी थी फ़ैक्ट्रियों का धुआँ और कालिख, नयी औद्योगिक श्रमिक वर्ग की भीड़भाड़ वाली बस्तियाँ, गंदगी और सफ़ाई का नितांत अभाव। इसकी अन्य निशानियों में एक था नए प्रकार की सामाजिक अंत:क्रिया।

एक हिंदी फिल्म का गीत आगे दिया गया है। फ़िल्म *सी.आई.डी.* (1956) का यह गीत शहरी ज़िंदगी के भौतिक एवं अनुभवात्मक पक्षों का चित्रण इस प्रकार करता है–

ऐ दिल है मुश्किल जीना यहाँ,
ज़रा हट के, ज़रा बच के,
ये है बॉम्बे मेरी जान।
कहीं बिल्डिंग, कहीं ट्रामें,
कहीं मोटर, कहीं मिल,
मिलता है यहाँ सब कुछ,
इक मिलता नहीं दिल,
इंसान का नहीं कहीं नाम-ओ-निशाँ।
कहीं सत्ता, कहीं पत्ता,
कहीं चोरी, कहीं रेस,
कहीं डाका, कहीं फाका,
कहीं ठोकर, कहीं ठेस,
बेकारों का है क्या काम यहाँ!
बेघर को आवारा यहाँ कहते हँस-हँस,
खुद काटें गले सबके, कहें इसको बिज़नेस,
इक चीज़ के हैं कई नाम यहाँ।
गीता : बुरा दुनिया को है कहता
ऐसा भोला तू ना बन
जो है करता, वो है भरता,
है यहाँ का ये चलन।

भावानुवाद : प्यारे दिल, यहाँ ज़िंदगी मुश्किल है, अगर तुम खुद को बचाना चाहते हो तो तुम्हें देखना पड़ेगा कि तुम किस रास्ते पर जा रहे हो। मेरे प्यारे यह मुंबई है! तुम्हें यहाँ बहुमंज़िली इमारतें मिलेंगी, ट्रामें मिलेंगी, वाहन मिलेंगे, कारखाने मिलेंगे, इंसानियत भरे दिल को छोड़कर तुम्हें यहाँ सब कुछ मिलेगा। इंसानियत का यहाँ कोई नामो निशान नहीं हैं। यहाँ पर जो भी करें उसका कोई मतलब नहीं है। शक्ति या पैसा या चोरी या विश्वासघात ही

क्रियाकलाप-4

ध्यान दें कि औद्योगिक क्रांति को प्रारंभ करने वाला देश ब्रिटेन, कितनी शीघ्रता से ग्रामीण समाज से शहरी समाज में परिवर्तित हो गया। क्या भारत में भी इसी तरह की प्रक्रिया थी?

1810: 20 प्रतिशत जनसंख्या कस्बों तथा शहरों में रहती थी।
1910: 80 प्रतिशत जनसंख्या कस्बों तथा शहरों में रहती थी।

इस प्रक्रिया का भारत में एक अलग तरह का प्रभाव था। शहरी केंद्र तो बढ़े परंतु ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के प्रवेश के साथ अधिकांश लोग कृषि क्षेत्र की तरफ़ उन्मुख हुए।

यहाँ चलता है। अमीर लोग गृहविहीन लोगों की आवारा व्यक्तियों की तरह हँसी उड़ाते हैं, लेकिन जब वह एक दूसरे के गले काटते हैं, तब उसे व्यापार कहते हैं। यहाँ इस एक कार्य को कई नाम दिए गए हैं।

> अंग्रेज़ी कारखानों के मशीनों द्वारा तैयार माल के आगमन से भारी तादाद में भारतीय दस्तकार बरबाद हो गए क्योंकि अत्यधिक विकसित कारखानों में उनकी खपत नहीं हो सकती थी। इन बरबाद दस्तकारों ने मुख्यत: जीवन निर्वाह के लिए खेती को अपना लिया (देसाई 1975:70)।

कारखाना और इसके यांत्रिकी श्रम विभाजन को अकसर किसानों, दस्तकारों, साथ-ही-साथ परिवार और स्थानीय समुदायों को जान-बूझ कर खत्म करने की कोशिश के रूप में देखा जाता था। कारखाने को एक आर्थिक कठोर नियंत्रण के रूप में देखा गया जो अभी तक बैरकों और जेलों तक था। कुछ के अनुसार जैसे मार्क्स, कारखाना दमनकारी था। फिर भी काफ़ी हद तक स्वतंत्रता की गुजांइश थी। यहाँ श्रमिकों ने बेहतर ज़िंदगी हेतु सामूहिक कार्य प्रणाली एवं संगठित प्रयास, दोनों चीज़ें सीखीं।

नए समाजों के उभरने का एक और संकेतक था घड़ी के अनुसार समय का महत्त्व जो सामाजिक संगठन का आधार भी था। इसका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष वह तरीका था जिसके अनुसार अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में खेतिहर और औद्योगिक मज़दूरों की बढ़ती संख्या ने तेज़ी से घड़ी और कैलेंडर के अनुसार अपने को ढालना शुरू किया जो आधुनिक समय से पूर्व के काम के तरीके से एकदम भिन्न था। औद्योगिक पूँजीवाद के विकास से पहले काम की लय दिन के उजाले और जीतोड़ परिश्रम के बीच आराम या सामाजिक कर्तव्यों के आधार पर तय होती थी। कारखानों के उत्पादन ने श्रम को समकालिक बना दिया। इससे समय की पाबंदी, एक तरह की स्थिर रफ़्तार, कार्य करने के निश्चित घंटे और हफ़्ते के दिन निर्धारित हो गए। इसके अलावा घड़ी ने कार्य करने की अनिवार्यता पैदा कर दी। नियोक्ता और कर्मचारी

क्रियाकलाप-5

मालूम कीजिए कि किसी परंपरागत गाँव, कारखाने और कॉल सेंटर में कार्य किस प्रकार नियोजित किया जाता है।

© NCERT not to be republished

> **क्रियाकलाप-6**
>
> मालूम कीजिए कि किस प्रकार औद्योगिक पूँजीवाद ने गाँवों और शहरों में भारतीय जन-जीवन को बदल डाला है।

दोनों के लिए 'समय अब धन है: यह व्यतीत नहीं होता बल्कि खर्च हो जाता है।'

8

हमें यूरोप में समाजशास्त्र के आरंभ और विकास को क्यों पढ़ना चाहिए?

समाजशास्त्र के अधिकांश मुद्दे एवं सरोकार भी उस समय की बात करते हैं जब यूरोपियन समाज अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण और पूँजीवाद के आगमन के कारण भयंकर रूप से परिवर्तन की चपेट में था। बहुत से मुद्दे जो उस समय प्राय: उठते थे, उदाहरण के लिए, नगरीकरण या कारखानों के उत्पादन, सभी आधुनिक समाजों के लिए प्रासंगिक थे, यद्यपि उनकी कुछ विशेषताएँ थोड़ी अलग हो सकती थीं। वास्तव में, भारतीय समाज अपने औपनिवेशिक अतीत और अविश्वसनीय विविधता के कारण भिन्न है। भारत का समाजशास्त्र इसको दर्शाता है।

यदि ऐसा है तो उस समय के यूरोप पर ध्यान केंद्रित क्यों किया जाए? वहाँ से शुरुआत करना क्यों प्रासंगिक है? जवाब अपेक्षाकृत आसान है। क्योंकि भारतीय होने के नाते हमारा अतीत अंग्रेज़ी पूँजीवाद और उपनिवेशवाद के इतिहास से गहरे जुड़ा हुआ है। पश्चिम में पूँजीवाद विश्वव्यापी विस्तार पा गया था। नीचे बॉक्स में दिया गया उद्धरण यह दर्शाता

> **पूँजीवाद और इसके द्वारा वैश्विक तौर पर समाजों का असमान रूपांतरण**
>
> सत्रहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में लगभग 24 मिलियन अफ़्रीकियों को दास बनाया गया था, जिनमें से 11 मिलियन अमरीका तक की यात्रा में जीवित रहे। यह आधुनिक इतिहास में दिखने वाले जनसंख्या के बहुत बड़े आंदोलनों में से एक है। उनको अपनी ज़मीन और संस्कृति से उखाड़ा गया और दुनिया भर में अलग-अलग हिस्सों में भयावह परिस्थितियों में भेजा गया और पूँजीवाद की सेवा के कार्य में लगा दिया गया। दास प्रथा इस बात का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है कि किस प्रकार लोगों को आधुनिकता के विकास के नाम पर उनकी मर्ज़ी के खिलाफ़ फँसाया गया। दासता की संस्था उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कम होने लगी। लेकिन हमारे लिए भारत में यह 1800 के बाद का काल था जब बंधुआ मज़दूरों को अंग्रेज़ों द्वारा जहाज़ों में भरकर दूरस्थ देशों, जैसे दक्षिण अमेरिका में सूरीनाम अथवा वेस्टइंडीज़ अथवा फिजी द्वीपों, में उनकी सूती कपड़े की मिलों और चीनी कारखानों को चलाने के लिए ले जाया गया। एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी लेखक वी.एस. नायपॉल, जिनको नोबल पुरस्कार भी दिया गया, उन हज़ारों लोगों में से एक के वंशज हैं जिन्हें ज़बरदस्ती उन अनजान जगहों पर ले जाया गया जो उन्होंने कभी नहीं देखी थीं और जहाँ से लौटने में वे असमर्थ थे और वहीं मर गए।

है कि किस प्रकार पश्चिमी पूँजीवाद ने दो छोरों पर संसार को प्रभावित किया था।

आर.के. लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत मॉरीशस का यात्रा विवरण हमें बीते हुए औपनिवेशिक और वैश्विक अतीत की याद दिलाता है–

> यहाँ अफ्रीकी और चीनी, बिहारी और डच, पारसी और तमिल, अरबी, फ्राँसीसी और अंग्रेज़ सब एक दूसरे के साथ घुलमिल कर रहते हैं... उदाहरण के लिए, एक तमिल, जिसका भ्रामक–सा दक्षिण भारतीय चेहरा था और एक लुभावना–सा नाम भी था, राधाकृष्ण गोविंदन, सचमुच मद्रास से था। मैंने उससे तमिल में बात की। उसने मुझे फ्रेंच मिश्रित टूटी–फूटी इंगलिश में कठिनाई से जवाब देकर आश्चर्यचकित कर दिया। श्रीमान गोविंदन को तमिल का ज्ञान बिलकुल नहीं है और उनकी जिह्वा ने तमिल का उच्चारण करना शताब्दियों पहले बंद कर दिया है (लक्ष्मण 2003)!

9

भारत में समाजशास्त्र का विकास

उपनिवेशवाद आधुनिक पूँजीवाद एवं औद्योगीकरण का आवश्यक हिस्सा था। इसलिए पश्चिमी समाजशास्त्रियों का पूँजीवाद एवं आधुनिक समाज के अन्य पक्षों पर लिखित दस्तावेज़, भारत में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों को समझने के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। फिर भी जब हम शहरीकरण के संदर्भ में देखते हैं, उपनिवेशवाद में यह तथ्य निहित है कि आवश्यक नहीं है कि औद्योगीकरण का असर भारत में भी उतना ही था जितना पश्चिम में। कार्ल मार्क्स के ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रभाव को लेकर की गई टिप्पणियों से असमानता उजागर होती है–

> भारत जो पिछले काफ़ी समय से विश्व की एक महान कपास उत्पादन कार्यशाला थी, अब इंगलिश धागों और सूती सामान से भरा पड़ा था। इसके अपने उत्पादन को इंग्लैंड से बाहर निकालकर अथवा अत्यंत निर्मम शर्तों पर स्वीकार करके, अंग्रेज़ उत्पादकों को उनके उत्पादनों पर केवल थोड़ा और नाम मात्र शुल्क लगाकर, भारी मात्रा में यहाँ लाकर, स्वदेशी वस्त्र उद्योग को बरबाद कर दिया गया था, जो कभी शान हुआ करता था (मार्क्स 1853 देसाई 1975 में उद्धृत)।

भारत में समाजशास्त्र को भारतीय समाज के बारे में पश्चिमी लेखकों द्वारा लिखित दस्तावेज़ों और विचारों से भी जूझना पड़ता था जो हमेशा सही नहीं होते थे। ये विचार अंग्रेज़ औपनिवेशिक अधिकारियों और पश्चिमी विद्वानों दोनों द्वारा व्यक्त किए गए थे। उनमें से बहुतों के लिए भारतीय समाज पाश्चात्य समाज के एकदम विपरीत था। हम यहाँ केवल एक उदाहरण देते हैं कि एक भारतीय गाँव को किस तरह से समझा गया और अपरिवर्तनीय रूप में चित्रित किया गया।

समकालीन व विक्टोरिया कालीन विकास के विचारों से सहमति रखते हुए पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय गाँव को अवशेष के रूप में देखा जिसे 'समाज की शैशवावस्था' कहा गया था। उन्होंनें उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में यूरोपियन समाजों का अतीत देखा।

औपनिवेशिक विरासत वाले देशों, जैसे भारत में, एक दूसरा साक्ष्य यह था कि यहाँ समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान में प्रायः अंतर किया जाता था। एक स्तरीय पाश्चात्य पाठ्यपुस्तक में समाजशास्त्र की परिभाषा है, 'मानव समूहों और समाजों का अध्ययन, जिसमें औद्योगीकृत विश्व के विश्लेषण पर पर्याप्त बल दिया गया है' (गिडिंस 2001: 699)। सामाजिक मानवविज्ञान की एक स्तरीय पाश्चात्य परिभाषा इस प्रकार होगी, गैर-पश्चिमी साधारण समाजों अर्थात 'दूसरी' संस्कृतियों का अध्ययन। भारत में किस्सा सर्वथा अलग है। एम.एन. श्रीनिवास इसका खाका इस प्रकार खींचते हैं–

> भारत जैसे देश में, इसके आकार और विभिन्नता के चलते, क्षेत्रीय, भाषायी, धार्मिक, पंथ संबंधी, सजातीय (जाति के साथ) तथा ग्रामीण और शहरी इलाकों के बीच में असंख्य 'दूसरे' हैं... ऐसी संस्कृति और समाज में जैसा कि भारत में है, 'दूसरे' से आमना-सामना वास्तव में आस-पास या पड़ोस में ही हो जाता है...(श्रीनिवास 1966 :205)।

भारत में इससे भी आगे सामाजिक मानवविज्ञान, जिसमें पहले 'आदिम लोगों' के अध्ययन ने स्थान ले रखा था, धीरे-धीरे बदलकर किसानों, सजातीय समूहों, सामाजिक वर्गों, प्राचीन सभ्यताओं के विभिन्न पक्षों और विशेषताओं एवं आधुनिक औद्योगिक समाजों के अध्ययन पर आ गया था। भारत में समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवविज्ञान के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं है, जोकि बहुत सारे पाश्चात्य देशों में इन दोनों विषयों की एक विशेषता के रूप में मौजूद है। शायद भारत में पाई जाने वाली आधुनिक एवं ग्रामीण और महानगरीय और परंपरागत अति विभिन्नता ही इसकी वजह है।

10

समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से इसके संबंध

समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय क्षेत्र काफ़ी व्यापक है। यह एक दुकानदार और ग्राहक के बीच, एक अध्यापक और विद्यार्थी के बीच, दो मित्रों के बीच अथवा परिवार के सदस्यों के बीच की अंत:क्रिया के विश्लेषण को अपना केंद्रबिंदु बना सकता है। इसी प्रकार यह राष्ट्रीय मुद्दों जैसे बेरोज़गारी या जातीय संघर्ष या सरकारी नीतियों का आदिवासी जनसंख्या के वनों पर अधिकार के प्रभाव या ग्रामीण कर्ज़ों को अपना केंद्रबिंदु बना सकता है। अथवा वैश्विक सामाजिक प्रक्रियाएँ जैसे, नए लचीले श्रम कानूनों का श्रमिक वर्ग पर प्रभाव या इलैक्ट्रॉनिक माध्यम का नौजवानों पर प्रभाव या विदेशी विश्वविद्यालयों के आगमन का देश की शिक्षा-प्रणाली पर प्रभाव की जाँच कर सकता है। इस प्रकार समाजशास्त्र विषय इससे परिभाषित नहीं होता कि वह क्या अध्ययन (अर्थात परिवार या व्यापार संघ अथवा गाँव) करता है बल्कि इससे परिभाषित होता है वह एक चयनित क्षेत्र का अध्ययन कैसे करता है।

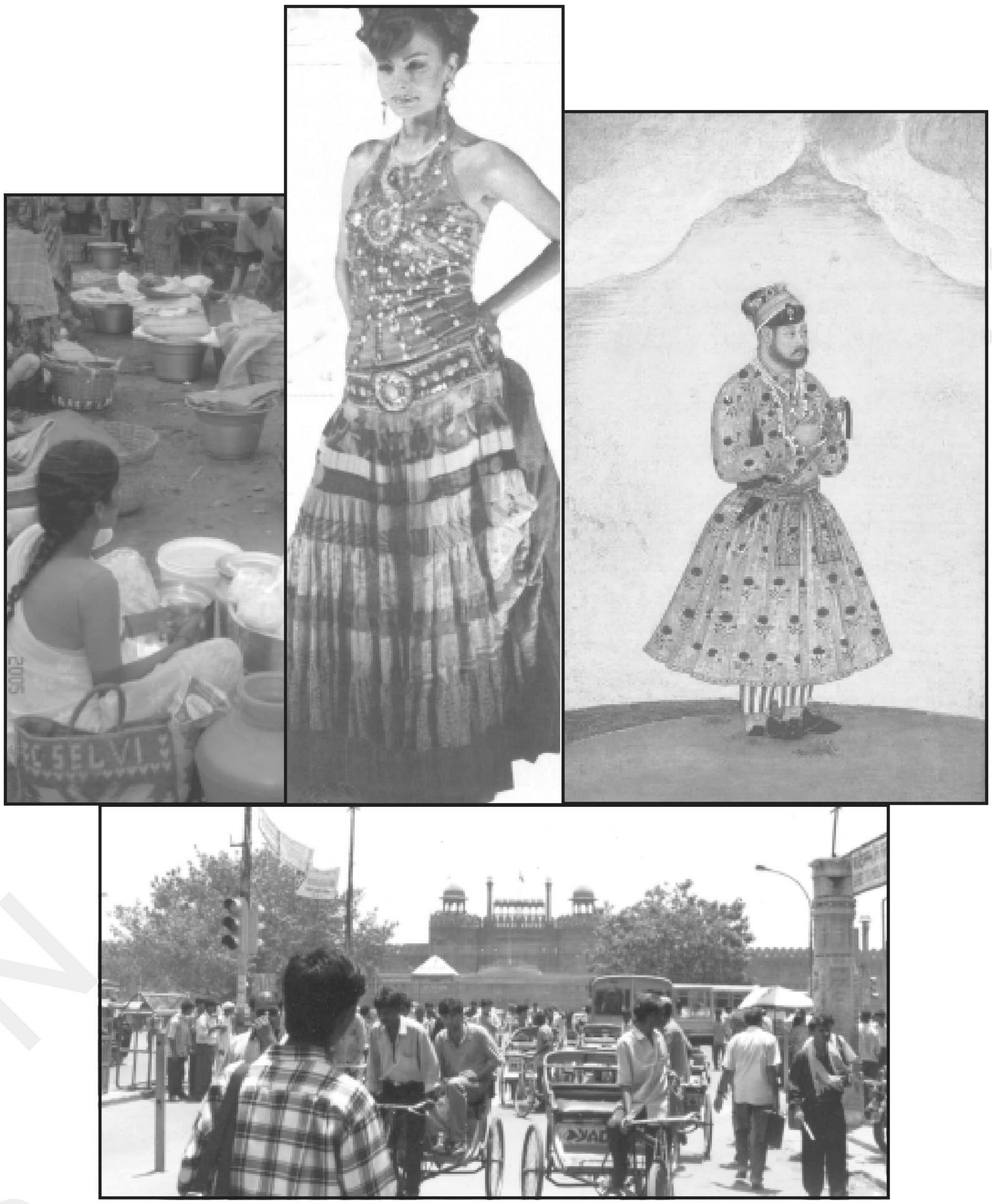

चर्चा कीजिए कि इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र फ़ैशन / कपड़ों, बाज़ारों और शहर की गलियों का अध्ययन कैसे करेंगे

समाजशास्त्र समाजिक विज्ञानों के समूह का एक हिस्सा है जिसमें मानवविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान एवं इतिहास शामिल हैं। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में विभाजन एकदम सुस्पष्ट नहीं है और सभी में कुछ हद तक साझी रुचियाँ, संकल्पनाएँ एवं पद्धतियाँ हैं। इसलिए यह समझा जाना ज़रूरी है, कि कुछ विषयों में पृथकता कुछ हद तक स्वैच्छिक है और इसका कठोरता से पालन नहीं होना चाहिए। सामाजिक विज्ञानों को अलग-अलग करना अंतरों को अतिरंजित करना और समानताओं पर आवरण चढ़ाने जैसा होगा। इससे भी बढ़कर नारी अधिकारवादी सिद्धांतों ने अंत:विषयक उपागम की अत्यधिक आवश्यकता को दिखाया है। उदाहरण के लिए, एक राजनीतिक विज्ञानी या अर्थशास्त्री लिंगों की भूमिका और उनके राजनीति पर प्रभाव अथवा परिवार के समाजशास्त्र के बगैर अर्थव्यवस्था या लिंग पर आधारित श्रम विभाजन का अध्ययन कैसे करेगा।

समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण का अध्ययन करता है। शास्त्रीय आर्थिक उपागम पूर्णरूप से आर्थिक चरों के अंत:संबंधों का वर्णन करता है: कीमत, माँग एवं पूर्ति का संबंध; मुद्रा प्रवाह; आगत और निर्गत का अनुपात और इसी तरह अन्य। परंपरागत अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्र 'आर्थिक क्रियाकलाप' के संकुचित दायरे तक रहा है, मुख्यत: किसी एक समाज में अपर्याप्त वस्तुओं एवं सेवाओं का वितरण। वे अर्थशास्त्री जो राजनीतिक आर्थिक उपागम से प्रभावित हैं, आर्थिक क्रियाकलापों को स्वामित्व के रूप में उत्पादन के साधनों के साथ संबंधों के विस्तृत दायरे में समझने का प्रयास करते हैं। आर्थिक विश्लेषण में प्रभावी प्रकृति का उद्देश्य किसी तरह से आर्थिक व्यवहार के सुनिश्चित कानूनों का निर्माण करना था।

समाजशास्त्रीय उपागम आर्थिक व्यवहार को सामाजिक मानकों, मूल्यों, व्यवहारों और हितों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखता है। निगमित क्षेत्र के प्रबंधक इस बात को जानते हैं। विज्ञापन उद्योग में भारी निवेश का सीधा संबंध उपभोग के तरीकों और जीवन-शैली को नया रूप देने की आवश्यकता से है। अर्थशास्त्र के अंदर की प्रवृत्तियाँ जैसे नारीवादी अर्थशास्त्री लिंग को समाज के केंद्रीय संगठनकारी सिद्धांत की तरह पेश कर इसके दायरे को बढ़ाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए वे यह देखेंगे कि किस प्रकार घर पर किया गया कार्य बाहर की उत्पादकता से जुड़ा हुआ है।

अर्थशास्त्र के परिभाषित विषय क्षेत्र ने इसको एक अत्यधिक केंद्रित और विचारशील विषय

क्रियाकलाप-7

- क्या आप सोचते हैं कि विज्ञापन वास्तव में लोगों के उपभोग के तरीकों को प्रभावित करते हैं?
- क्या आप यह सोचते हैं कि 'अच्छे जीवन' की जो परिभाषा है वह केवल आर्थिक रूप से ही परिभाषित है?
- क्या आप यह सोचते हैं कि 'खर्चे' और 'बचत' की आदतें सांस्कृतिक रूप से बनती हैं?

के रूप में सुविधाजनक तरीके से विकसित होने में मदद की है। समाजशास्त्री प्राय: अर्थशास्त्रियों से इस बात के लिए ईर्ष्या रखते हैं कि उनकी शब्दावली उचित होती हैं और उनकी माप एकदम सही होती है और उनके सैद्धांतिक कार्यों के परिणामों को व्यावहारिक सुझावों में परिणित करने की क्षमता से भी जिसका जनहित नीतियों के लिए बड़ा अर्थ होता है। फिर भी अर्थशास्त्री की पूर्वानुमान लगाने की योग्यता को प्राय: व्यक्तिगत व्यवहार, सांस्कृतिक मानकों एवं संस्थात्मक प्रतिरोध की अनदेखी करने की वजह से नुकसान उठाना पड़ता हैं जिसका अध्ययन समाजशास्त्री करते हैं। पियरे बोरद्यु ने 1998 में लिखा है–

> वास्तविक आर्थिक विज्ञान अर्थव्यवस्था की प्रत्येक लागत पर ध्यान देगा–केवल निगमित निकायों से संबंधित लागतों पर ही नहीं, बल्कि अपराध, आत्महत्याओं और ऐसी ही अन्य लागतों पर भी।
>
> हमें खुशियों भरा ऐसा अर्थशास्त्र आगे लाना होगा जो सभी प्रकार के हितों का ध्यान रखेगा, व्यक्तिगत एवं सामूहिक, भौतिक एवं सांकेतिक क्रियाकलापों से संबंधित (जैसे, सुरक्षा) और साथ ही निष्क्रियता या अनिश्चित रोज़गार से संबंधित भौतिक एवं प्रतीकात्मक लागत का भी (उदाहरण के लिए दवाओं का उपभोग: शमनकारी दवाओं के इस्तेमाल का विश्व रिकार्ड फ्रांस के नाम है), (स्वेडबर्ग 2003 से उद्धृत)।

सामान्यत: समाजशास्त्र अर्थशास्त्र के विपरीत तकनीकी समाधान प्रस्तुत नहीं करता। बल्कि यह एक प्रश्नकारी एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है। यह आधारभूत मान्यताओं के बारे में प्रश्न पूछने में सहायता करता है और इस प्रकार न केवल निर्धारित लक्ष्यों के तकनीकी साधनों के प्रति बल्कि स्वयं उद्देश्य की सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति भी चर्चा का अवसर प्रदान करता है। हाल ही में आर्थिक समाजशास्त्र में पुनरुत्थान की प्रवृत्ति देखने में आई है जिसका कारण शायद समाजशास्त्र का विशालतर और आलोचनात्मक दृष्टिकोण है।

समाजशास्त्र किसी सामाजिक स्थिति की पहले से विद्यमान समझ को ज़्यादा स्पष्ट और पर्याप्त समझ प्रदान करता है। यह तथ्यों की जानकारी के स्तर पर अथवा किसी चीज़ के घटित होने के कारण को बेहतर तरीके से समझने के स्तर पर हो सकते हैं (दूसरे शब्दों में, सैद्धांतिक समझ के द्वारा)।

समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान

जैसाकि अर्थशास्त्र में है, वैसे ही समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के बीच भी पद्धतियों और उपागमों की परस्पर अंत:क्रिया की बहुलता है। परंपरागत राजनीति विज्ञान मुख्यत: दो तत्त्वों पर केंद्रित था–राजनीतिक सिद्धांत और सरकारी प्रशासन। दोनों में से किसी भी शाखा में राजनीतिक व्यवहार गहन रूप में शामिल नहीं है। समान्यत: सैद्धांतिक भाग में प्लेटो से लेकर मार्क्स तक के सरकार संबंधी विचारों को केंद्रबिंदु बनाया गया

क्रियाकलाप-8

पिछले आम चुनाव में किए गए अध्ययन के प्रकारों की जानकारी प्राप्त कीजिए। संभवत: आप उनमें राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र दोनों के लक्षण पाएँगे। चर्चा कीजिए कैसे विभिन्न विषय आपस में अंत:क्रिया करते हैं और परस्पर प्रभाव डालते हैं।

है जबकि प्रशासनिक भाग का केंद्रबिंदु सरकार के वास्तविक संचालन की तुलना में इसका औपचारिक ढाँचा रहा है।

समाजशास्त्र समाज के सभी पक्षों के अध्ययन को समर्पित है जबकि परंपरागत राजनीति विज्ञान ने अपने को शक्ति के औपचारिक संगठन के साकार रूप में अध्ययन तक सीमित रखा। समाजशास्त्र सरकार सहित संस्थाओं के समुच्चय के बीच अंत:संबंधों पर बल देता है जबकि राजनीति विज्ञान सरकार में विद्यमान प्रक्रियाओं पर ध्यान देता है।

हालाँकि समाजशास्त्र की अनुसंधान में समान रुचि को लेकर राजनीति विज्ञान से लंबी साझेदारी है। मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री ने ऐसा काम किया है जिसको राजनीतिक समाजशास्त्र का नाम दिया जा सकता है। राजनीतिक समाजशास्त्र का केंद्र राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक अध्ययन के रूप में बढ़ता जा रहा है। पिछले कुछ भारतीय चुनावों में भी मतदान के राजनीतिक प्रतिमानों का काफ़ी विशिष्ट अध्ययन देखने में आया है। राजनीतिक संगठनों की सदस्यता, संगठनों में निर्णय लेने की प्रक्रिया, राजनीतिक दलों के समर्थन के समाजशास्त्रीय कारण, राजनीति में लिंग की भूमिका आदि का भी अध्ययन किया जाता रहा है।

समाजशास्त्र एवं इतिहास

इतिहासकार एक तरह से नियम के मुताबिक अतीत का अध्ययन करते हैं, जबकि समाजशास्त्री समकालीन समय या कुछ ही पहले के अतीत में ज़्यादा रुचि रखते हैं। इतिहासकार पहले वास्तविक घटनाओं के चित्रण में एवं चीज़ें वास्तव में कैसे घटित हुईं इसे स्थापित करने में सतुंष्ट होते थे, जबकि समाजशास्त्र में असामयिक संबंधों को स्थापित करने पर ध्यान केंद्रित था।

इतिहास ठोस विवरणों का अध्ययन करता है, जबकि समाजशास्त्री ठोस वास्तविकताओं से सार निकालकर उनका वर्गीकरण एवं सामान्यीकरण करता है। आजकल इतिहासकार अपने विश्लेषण में समाजशास्त्रीय पद्धतियों एवं धारणाओं का प्रयोग करने में बराबर शामिल रहते हैं।

परंपरागत इतिहास राजाओं और युद्धों के इतिहास के बारे में रहा है। इतिहासकारों द्वारा अपेक्षाकृत कम चकाचौंध और कम रोमांचक घटनाओं जैसे ज़मीन के संबंधों में परिवर्तन या परिवार में लिंग संबंध के इतिहास का अध्ययन परंपरागत रूप में कम ही हुआ है लेकिन यही

क्रियाकलाप-9

जानकारी प्राप्त कीजिए कि इतिहासकारों ने कला, क्रिकेट, कपड़े, फ़ैशन, वास्तुकला एवं भवन विन्यास के इतिहास के बारे में किस प्रकार लिखा है।

बात समाजशास्त्रियों की रुचि का प्रमुख क्षेत्र बनी। हालाँकि आजकल इतिहास काफ़ी हद तक समाजशास्त्रीय हो गया है और सामाजिक इतिहास तो इतिहास की विषय-वस्तु है। यह शासकों के कार्यों, युद्ध एवं राजतंत्रवाद के बजाय सामाजिक प्रतिमानों, लिंग संबंधों, लोकाचार, प्रथाओं एवं प्रमुख संस्थाओं का अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान को प्रायः व्यवहार के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह मुख्यतः व्यक्ति से संबंधित है। यह उसकी बौद्धिकता एवं सीखने की प्रवृत्ति, अभिप्रेरणाओं एवं याददाश्त, तंत्रिका प्रणाली एवं प्रतिक्रिया का समय, आशाओं और डर में रुचि रखता है। सामाजिक मनोविज्ञान, जो समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के बीच एक पुल का कार्य करता है, अपनी प्राथमिक रुचि एक व्यक्ति में रखता है लेकिन उसका इस बात से सरोकार रहता है कि व्यक्ति किस प्रकार सामाजिक समूहों में सामूहिक तौर पर अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार करता है।

समाजशास्त्र समाज में संगठित व्यवहार को समझने का प्रयास करता रहता है। यही वह तरीका है जिससे समाज के विभिन्न पक्षों द्वारा व्यक्तित्व को आकार मिलता है, उदाहरण के लिए, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था, उनका परिवार और नातेदारी संरचना, उनकी संस्कृति, मानक एवं मूल्य। यह याद करना रुचिकर होगा कि दुर्खाइम जिन्होंने आत्महत्या के अपने प्रख्यात अध्ययन में समाजशास्त्र को स्पष्ट पद्धति एवं विषय क्षेत्र में स्थापित करने की चेष्टा की, इसमें उन्होंनें उन व्यक्तियों की व्यक्तिगत उत्कंठाओं को बाहर ही रखा जिन्होंने आत्महत्या की या इसकी चेष्टा की। यह उस सांख्यिकीय आँकड़ें के लिए किया गया जो उन व्यक्तियों की कई सामाजिक विशेषताओं से सरोकार रखते थे।

समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवविज्ञान

अधिकांश देशों में मानवविज्ञान में पुरातत्व विज्ञान, भौतिक मानवविज्ञान, सांस्कृतिक इतिहास, भाषा की विभिन्न शाखाएँ और 'सामान्य समाजों' में जीवन के सभी पक्षों का अध्ययन शामिल है। यहाँ हमारा सरोकार सामाजिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक मानवविज्ञान से है क्योंकि यह समाजशाास्त्र के अध्ययन के एकदम निकट है। समाजशाास्त्र को आधुनिक जटिल समाजों का अध्ययन समझा जाता है जबकि सामाजिक मानवविज्ञान को सरल समाजों का अध्ययन समझा जाता है।

हमने पहले देखा है कि प्रत्येक विषय का अपना इतिहास अथवा जीवनी होती है। सामाजिक मानवविज्ञान का विकास पश्चिम में उन दिनों हुआ जब यह माना जाता था कि पश्चिमी शिक्षित सामाजिक मानवविज्ञानियों ने गैर-यूरोपियन समाजों का अध्ययन किया जिनको प्रायः विजातीय, अशिष्ट और असभ्य समझा जाता था। जिनका अध्ययन किया गया और जिनका अध्ययन नहीं किया गया था, उनके बीच के असमान संबंध पर ज़्यादा टिप्पणी नहीं की गई। लेकिन अब समय बदल गया

असम में चाय पत्ती तोड़ने वाले श्रमिक

है और अब वे 'मूल निवासी' विद्यमान हैं, चाहे वे भारतीय हैं या सूडानी, नागा हैं या संथाल, जो अब अपने समाजों के बारे में बोलते हैं और लिखते हैं। अतीत के मानवविज्ञानियों ने सरल समाजों का विवरण तटस्थ वैज्ञानिक तरीके से लिखा था। प्रत्यक्ष व्यवहार में वे लगातार उन समाजों की तुलना आधुनिक पश्चिमी समाजों से करते रहे थे, जिसे वे एक मानदंड के रूप में देखते थे।

अन्य परिवर्तनों ने भी समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान की प्रकृति को पुनः परिभाषित किया है। जैसा कि हमने देखा आधुनिकता ने एक ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत की जिसमें छोटे से छोटा गाँव भी भूमंडलीय प्रक्रियाओं से प्रभावित हुआ। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—उपनिवेशवाद। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौरान भारत के अत्यधिक दूरस्थ गाँवों ने भी अपने प्रशासन और भूमि कानूनों में परिवर्तन, अपने राजस्व उगाही में परिवर्तन और अपने उत्पादक उद्योग को समाप्त होते हुए देखा था। समकालीन भूमंडलीय प्रक्रियाओं ने 'दुनिया के इस प्रकार सिकुड़ने' को और ज़्यादा बल प्रदान किया है। एक सरल समाज का अध्ययन करते समय ये मान्यता थी कि यह एक सीमित समाज था। हम जानते हैं कि आज ऐसा नहीं है।

क्रियाकलाप-10

- मालूम कीजिए कि असम के चाय बागानों में काम करने वाले संथाल जाति के श्रमिकों के पूर्वज भारत में कहाँ से आए थे।
- असम में चाय की खेती की शुरुआत कब हुई?
- क्या अंग्रेज़ उपनिवेशवाद से पहले चाय पीते थे?

सामाजिक मानवविज्ञान द्वारा सरल व निरक्षर समाजों पर किए गए परंपरागत अध्ययन का प्रभाव मानवविज्ञान की विषय वस्तु और विषय सामग्री पर पड़ा। सामाजिक मानवविज्ञान की प्रवृत्ति समाज (सरल समाज) के सभी पक्षों का एक समग्र में अध्ययन करने की होती थी। अभी तक जो विशेषज्ञता प्राप्त हुई है वह क्षेत्र पर आधारित थी उदाहरण के लिए अंडमान द्वीप समूह, नूअर अथवा मेलैनेसिया। समाजशास्त्री जटिल समाजों का अध्ययन करते हैं, अत: समाज के भागों जैसे नौकरशाही या धर्म या जाति अथवा एक प्रक्रिया जैसे सामाजिक गतिशीलता पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

सामाजिक मानवविज्ञान की विशेषताएँ थीं, लंबी क्षेत्रीय कार्य परंपरा, समुदाय जिसका अध्ययन किया उसमें रहना और अनुसंधान की नृजाति पद्धतियों का उपयोग। समाजशास्त्री प्राय: सांख्यिकी एवं प्रश्नावली विधि का प्रयोग करते हुए सर्वेक्षण पद्धति एवं संख्यात्मक आँकड़ों पर निर्भर करते हैं। 5वें अध्याय में आप इन परंपराओं के बारे में और ज़्यादा विस्तार से जान पाएँगे।

आज एक सरल और जटिल समाज में अंतर को स्वयं एक बड़े पुनर्विचार की आवश्यकता है। भारत स्वयं परंपरा और आधुनिकता का, गाँव और शहर का, जाति और जनजाति का, वर्ग एवं समुदाय का एक जटिल मिश्रण है। गाँव राजधानी दिल्ली के बीचों-बीच निवास करते हैं। कॉल सेंटर देश के विभिन्न कस्बों से यूरोपीय और अमेरिकी ग्राहकों की सेवा करते हैं।

भारतीय समाजशास्त्र दोनों परंपराओं से सार ग्रहण करने में काफ़ी उदार रहा है। भारतीय समाजशास्त्री अकसर भारतीय समाजों के अध्ययन में केवल अपनी संस्कृति का नहीं बल्कि उनका भी अध्ययन करते हैं जो उनकी संस्कृति का हिस्सा नहीं है। यह शहरी आधुनिक भारत के जटिल अंतर करने वाले समाजों के साथ-साथ जनजातियों का भी एक समग्र रूप में अध्ययन कर सकता है।

इस बात का डर बना रहता था कि सरल समाजों के खत्म होने से सामाजिक मानवविज्ञान अपनी विशिष्टता खो देगा और समाजशास्त्र में मिल जाएगा। हालाँकि दोनों विषयों में लाभदायक अंत:परिवर्तन हुए हैं और आजकल पद्धतियों एवं तकनीकों को दोनों विषयों से लिया जाता है। राज्य और वैश्वीकरण के मानवविज्ञानी अध्ययन किए गए हैं जोकि सामाजिक मानवविज्ञान की परंपरागत विषय-वस्तु से एकदम अलग हैं। दूसरी और समाजशास्त्र भी आधुनिक समाजों की जटिलताओं के अध्ययन के लिए संख्यात्मक एवं गुणात्मक तकनीकों, समष्टि और व्यष्टि उपागमों का उपयोग करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है हम इस पर चर्चा 5वें अध्याय में भी जारी रखेंगे। क्योंकि भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान में अति निकट का संबंध रहा है।

शब्दावली

पूँजीवाद—आर्थिक उद्यम की एक व्यवस्था, जोकि बाज़ार विनिमय पर आधारित है। 'पूँजी' से आशय है कोई संपत्ति, जिसमें धन, भवन एवं मशीनें आदि शामिल हैं, जो बिक्री के लिए वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग की जाती हैं अथवा बाज़ार में लाभ कमाने के उद्देश्य से विनियोग की जा सकती हैं। यह व्यवस्था उत्पादन के साधनों और संपत्तियों के निजी स्वामित्व पर आधारित है।

द्वंद्वात्मक—सामाजिक ताकतों के विरोध की क्रिया या उनकी विद्यमानता जैसे, सामाजिक बाध्यता और व्यक्तिगत इच्छा।

आनुभविक अन्वेषण—समाजशास्त्रीय अध्ययन में दिए गए किसी भी क्षेत्र में की जाने वाली तथ्यपरक जाँच।

नारीवादी सिद्धांत—एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण जो सामाजिक विश्व का विश्लेषण करते समय लिंग की महत्ता को केंद्र में रखने पर बल देता है। यद्यपि इस सिद्धांत के कई तत्त्व हैं लेकिन उन सबका एक सरोकार है—समाज में लिंग के आधार पर होने वाली असमानता की व्याख्या करना एवं उसे दूर करने के लिए कार्य करना।

समष्टि समाजशास्त्र—बड़े समूहों, संगठनों अथवा सामाजिक व्यवस्थाओं का अध्ययन।

व्यष्टि समाजशास्त्र—आमने-सामने की अंत:क्रिया के संदर्भ में मानव व्यवहार का अध्ययन।

सामाजिक बाध्यता—एक शब्द जो इस तथ्य को दर्शाता है कि हम जिन समूहों और समाजों के हिस्से है वे हमारे व्यवहार को अनुकूलता के हिसाब से प्रभावित करते हैं।

मूल्य—व्यक्ति या समूहों द्वारा माना जाने वाला विचार कि क्या ज़रूरी है, सही है, अच्छा है या बुरा। विभिन्न मूल्य मानव संस्कृति की विभिन्नता के मुख्य पक्षों को दर्शाते हैं।

अभ्यास

1. समाजशास्त्र के उद्‌गम और विकास का अध्ययन क्यों महत्त्वपूर्ण है?
2. 'समाज' शब्द के विभिन्न पक्षों की चर्चा कीजिए। यह आपके सामान्य बौद्धिक ज्ञान की समझ से किस प्रकार अलग है?
3. चर्चा कीजिए कि आजकल अलग-अलग विषयों में परस्पर लेन-देन कितना ज़्यादा है।
4. अपनी या अपने दोस्त अथवा रिश्तेदार की किसी व्यक्तिगत समस्या को चिह्नित कीजिए। इसे समाजशास्त्रीय समझ द्वारा जानने की कोशिश कीजिए।

© NCERT not to be republished

सहायक पुस्तकें

बर्जर, पीटर एल. 1963. *इनवीटेशन टू सोशियोलॉजी : ए ह्यूमनिस्टिक पर्सपेक्टिव.* पेंगुइन, हारमंडस्वर्थ।

बियरस्टेड, रॉबर्ट. 1970. *सोशल ऑर्डर.* टाटा मैग्रा-हिल पब्लिशिंग कं. लिमिटेड, मुंबई।

बॉटोमोर, टाम. 1962. *सोशियोलॉजी : ए गाइड टू प्रॉब्लम्स एंड लिटरेचर.* जार्ज, ऐलन एंड अनविन, लंदन।

चौधरी, मैत्रेयी. 2003. द *प्रैक्टिस ऑफ सोशियोलॉजी.* ओरियेंट लोंगमैन, नयी दिल्ली।

देसाई, ए.आर. 1975. *सोशल बैकग्राऊंड ऑफ इंडियन नैशनलिज़्म.* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई।

दुबे, एस.सी. 1977. *अंडरस्टैंडिंग सोसायटी : सोशियोलॉजी : द डिसिप्लिन एंड इट्स सिग्नीफ़िकेंस :* पार्ट I. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

फ्रीमैन, जेम्स एम. 1978. 'कलैक्टिंग द लाइफ हिस्ट्री ऑफ एन इंडियन अनटचेबल', वातुक, सिलविया. (सं.), *अमेरिकन स्टडीज़ इन द ऐंथ्रोपोलॉजी ऑफ इंडिया.* मनोहर पब्लिशर्स, दिल्ली।

गिडिंस, एंथोनी. 2001. *सोशियोलॉजी.* चतुर्थ संस्करण, पोलिटी प्रेस, केंब्रिज।

इंकल्स, एलैक्स. 1964. *वाट इज़ सोशियोलॉजी? एन इंट्रोडक्शन टू द डिसिप्लिन एंड प्रोफैशन.* प्रिंटिस हाल, न्यू जर्सी।

जयराम, एन. 1987. *इंट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी.* मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली।

लक्ष्मण, आर.के. 2003. द *डिस्टॉरटेड मिरर.* पेंगुइन, दिल्ली।

मिल्स, सी. राइट. 1959. द *सोशियोलॉजीकल इमेजिनेशन.* पेंगुइन, हारमंडस्वर्थ।

सिंह, योगेंद्र. 2004. *आइडियोलॉजी एंड थ्योरी इन इंडियन सोशियोलॉजी.* रावत पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली।

श्रीनिवास, एम.एन. 2002. *विलेज, कास्ट, जेंडर एंड मैथड : ऐसेज़ इन इंडियन सोशल एंथ्रोपोलॉजी.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

स्वेडबर्ग, रिचर्ड. 2003. *प्रिंसिपल्स ऑफ इकोनोमिक सोशियोलॉजी.* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन एंड ऑक्सफोर्ड।

© NCERT not to be republished

अध्याय 2

समाजशास्त्र में प्रयुक्त शब्दावली, संकल्पनाएँ एवं उनका उपयोग

1

परिचय

पिछला अध्याय हमें समाज और समाजशास्त्र दोनों से परिचित कराता है। हमने देखा कि समाजशास्त्र का मुख्य कार्य समाज और व्यक्ति की परस्पर क्रियाओं की खोज करना है। हमने यह भी देखा कि व्यक्ति समाज में स्वच्छंद रूप से नहीं रहते। वे सामूहिक निकायों जैसे परिवार, जनजाति, जाति, वर्ग, कुल, राष्ट्र का हिस्सा होते हैं। इस अध्याय में आगे हम व्यक्तियों द्वारा बनाए गए समूहों के विभिन्न प्रकारों, असमान व्यवस्था के विभिन्न प्रकारों, स्तरीकरण की व्यवस्थाओं जिनमें व्यक्ति और समूह शामिल हैं, सामाजिक नियंत्रण के कार्य करने के तरीकों, व्यक्तियों की भूमिकाओं व जिस तरह वे उन्हें निभाते हैं एवं उनकी प्रस्थिति के बारे में पढ़ेंगे।

दूसरों शब्दों में, हम यह जानना शुरू करते हैं कि किस प्रकार समाज अपने आप कार्य करता है। क्या यह सामंजस्यपूर्ण है अथवा विरोधग्रस्त है? क्या प्रस्थिति और भूमिकाएँ निश्चित हैं? सामाजिक नियंत्रण किस प्रकार कार्य करता है? किस प्रकार की असमानताएँ मौजूद हैं? अभी भी यह प्रश्न रह जाता है कि इसे समझने के लिए हमें विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाओं की आवश्यकता क्यों होती है। समाजशास्त्र के लिए विशिष्ट शब्दावली की आवश्यकता क्यों पड़ती है जबकि हम अपने दैनिक जीवन में प्रस्थिति एवं भूमिका या सामाजिक नियंत्रण जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं?

किसी विषय के लिए, जैसे नाभिकीय भौतिकी, जो उन पदार्थों से संबंध रखता है जिन्हें सामान्यतः लोग नहीं जानते तथा जिनके लिए सामान्य भाषा में कोई शब्द नहीं है, यह आवश्यक है कि विषय की अपनी एक शब्दावली हो। तथापि, समाजशास्त्र के लिए शब्दावली और भी महत्त्वपूर्ण है, सिर्फ़ इसलिए कि इसकी विषय-वस्तु परिचित है और सिर्फ़ इसलिए कि इसे दर्शाने के लिए शब्द मौजूद हैं। हम अपने आस-पास की सामाजिक संस्थाओं से इतने अच्छी तरह परिचित हैं कि हम उन्हें स्पष्ट और बारीकी से नहीं देख सकते (बर्जर 1976:25)।

उदाहरण के लिए, हम यह सोच सकते हैं कि चूँकि हम परिवारों में रहते हैं, इसीलिए हम परिवारों के बारे में सब कुछ जानते हैं। इसका मतलब समाजशास्त्रीय ज्ञान को सामान्य बौद्धिक ज्ञान या प्रकृतिवादी व्याख्या, जिनकी चर्चा हमने अध्याय 1 में की है, के समानांतर रखने जैसा होगा।

पिछले अध्याय में हमने यह भी देखा कि किस प्रकार एक विषय के रूप में, समाजशास्त्र की एक जीवनी या इतिहास है। हमने देखा कि किस प्रकार भौतिक और बौद्धिक विकास ने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और इसके सरोकारों को आकार दिया। इसी तरह, समाजशास्त्रीय संकल्पनाओं की भी एक कहानी है। बहुत सी संकल्पनाएँ सामाजिक चिंतकों के उन सामाजिक परिवर्तनों को समझने और उनका खाका खींचने की चिंता को दर्शाती हैं जो कि पूर्व आधुनिक समय से लेकर आधुनिक समय तक स्थानांतरित हुए हैं। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्रियों का प्रेक्षण है कि सरल, छोटे और परंपरागत समाजों में घनिष्ठ, अकसर आमने-सामने की अंत:क्रिया होती थी और आधुनिक, बड़े समाजों में औपचारिक अंत:क्रिया होती है। इसलिए उन्होंने प्रारंभिक समूहों को द्वितीयक से और समुदाय को समाज या संघ से पृथक किया। दूसरी अन्य संकल्पनाएँ, जैसे स्तरीकरण, समाजशास्त्रियों की समाज के समूहों के मध्य की संरचनात्मक असमानताओं को समझने के सरोकारों को प्रतिबिंबित करती है।

संकल्पनाएँ समाज में उत्पन्न होती हैं। तथापि, जिस प्रकार समाज में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति और समूह होते हैं, उसी प्रकार कई तरह की संकल्पनाएँ और विचार होते हैं। समाजशास्त्र स्वयं समाज को समझने के विभिन्न तरीकों एवं आधुनिक समय द्वारा लाए गए नाटकीय सामाजिक परिवर्तनों पर दृष्टि रखने के लिए पहचाना जाता है।

हमने देखा है कि किस प्रकार समाजशास्त्र के उद्‌गम के आरंभिक चरणों में भी समाज के बारे में प्रतिद्वंद्वी और विरोधी समझ थी। यदि कार्ल मार्क्स के लिए वर्ग और संघर्ष समाज को समझने की मुख्य संकल्पनाएँ थीं, तो एमिल दुर्खाइम के लिए सामाजिक एकता और सामूहिक चेतना मुख्य शब्द थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समाजशास्त्र संरचनात्मक प्रकार्यवादियों से बहुत प्रभावित हुआ जिन्होंने समाज को महत्त्वपूर्ण रूप से सामंजस्यपूर्ण पाया। उन्होंने समाज की तुलना एक जीव से करना लाभदायक समझा जिसमें सभी अंगों को, समग्र को बनाए रखने के लिए एक निश्चित कार्य करना होता है। दूसरे, विशेषकर मार्क्सवाद से प्रभावित संर्घषवादी सिद्धांतकारों ने समाज को विशेष रूप से विरोधग्रस्त पाया।

समाजशास्त्र में कुछ लोगों ने व्यक्तियों जैसे सूक्ष्म अंत:क्रिया से शुरुआत कर मानवीय व्यवहार को समझने की कोशिश की। दूसरों ने बृहत संरचनाओं जैसे वर्ग, जाति, बाज़ार, राज्य अथवा समुदाय से भी शुरुआत की। प्रस्थिति और भूमिका जैसी संकल्पनाएँ व्यक्ति के साथ आरंभ होती हैं। सामाजिक नियंत्रण या स्तरीकरण जैसी संकल्पनाएँ विस्तृत संदर्भ में आरंभ होती हैं जिनमें व्यक्तियों का स्थान पहले से ही तय होता है।

महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि ये वर्गीकरण और प्रकार जिनकी चर्चा हम समाजशास्त्र में करते हैं, हमारी मदद करते हैं और ये वास्तविकता को समझने के साधन हैं। ये समाज को समझने के ताले की चाबियाँ हैं। हमारी समझने की प्रक्रिया में ये प्रारंभिक बिंदु हैं, अंतिम उत्तर नहीं। पर क्या हो, यदि इन चाबियों पर ज़ंग लग जाए या ये मुड़ जाएँ या ये ताले में न जा पाएँ या प्रयास करने के बाद ताले में जा पाएँ? इन परिस्थितियों में हमें चाबी को बदलने की या सुधारने की आवश्यकता पड़ती है। समाजशास्त्र में, हम संकल्पनाओं और वर्गीकरण का प्रयोग करते हैं और साथ-साथ इनको निरंतर जाँचते भी हैं।

क्रियाकलाप-1

किसी एक विषय को कक्षा में चर्चा के लिए चुनें–

- विकास के लिए लोकतंत्र एक सहायता अथवा एक रुकावट है।
- लिंग समानता अधिक सामंजस्यपूर्ण अथवा अधिक विभाजक समाज बनाती है।
- विरोधों को दूर करने के लिए दंड अथवा चर्चा सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

दूसरे विषयों के बारे में सोचें।

किस प्रकार के अंतर उभरते हैं?

क्या ये एक अच्छा समाज कैसा होना चाहिए, के बारे में विभिन्न दृष्टियों को प्रतिबिंबित करते हैं?

क्या ये अंतर मनुष्यों की विभिन्न धारणाओं को दर्शाते हैं?

एक ही सामाजिक वस्तु के बारे में विभिन्न प्रकारों की परिभाषाओं या संकल्पनाओं अथवा सिर्फ़ विचारों की सह-अस्तित्वता के बारे में अकसर एक बैचेनी रही है। उदाहरण के लिए, संघर्षवादी सिद्धांत बनाम प्रकार्यवादी सिद्धांत। उपागमों की यह बहुलता समाजशास्त्र में विशेषतया बहुत ज़्यादा है और इसे नकारा नहीं जा सकता क्योंकि समाज स्वयं बहुत विविध रूपों में है।

हमारे द्वारा आगे की गई चर्चा में, आप देखेंगे कि किस प्रकार मतों में विभिन्नता होती है और किस प्रकार इन अंतरों पर वाद-विवाद और चर्चा, समाज को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

2

सामाजिक समूह एवं समाज

समाजशास्त्र मानव के सामाजिक जीवन का अध्ययन है। मानवीय जीवन की एक पारिभाषिक विशेषता यह है कि मनुष्य परस्पर अंत:क्रिया करता है, संवाद करता है और सामाजिक सामूहिकता को बनाता भी है। समाजशास्त्र का तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण दो स्पष्ट अहानिकारक तथ्यों को सामने लाता है। पहला यह है कि प्रत्येक समाज में चाहे वह प्राचीन या सामंतीय अथवा आधुनिक हो, एशियन या यूरोपियन या अफ्रीकन हो, मानवीय समूह और सामूहिकताएँ विद्यमान रहती है। दूसरा यह है कि विभिन्न समाजों में समूहों और सामूहिकताओं के प्रकार अलग-अलग होते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी भी तरह से लोगों का इकट्ठा होना एक सामाजिक समूह बनाए। समुच्चय सिर्फ़ लोगों का जमावड़ा होता है जो एक समय में एक ही स्थान पर एकत्र होते हैं लेकिन एक दूसरे से कोई निश्चित संबंध नहीं रखते। एक रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डे या बस स्टॉप पर प्रतीक्षा करते यात्री या सिनेमा दर्शक समुच्चय के उदाहरण हैं। समुच्चय को अकसर अर्ध समूहों का नाम दिया जाता है।

एक अर्ध समूह एक समुच्चय अथवा संयोजन होता है, जिसमें संरचना अथवा संगठन की कमी होती है, और जिसके सदस्य समूह के अस्तित्व के प्रति अनभिज्ञ या कम जागरूक होते हैं। सामाजिक वर्गों, प्रस्थिति समूहों, आयु एवं लिंग समूहों, भीड़ को अर्ध समूह के उदाहरणों के रूप में देखा जा सकता है। जैसा कि ये उदाहरण दर्शाते हैं, अर्ध समूह समय और विशेष परिस्थितियों में सामाजिक समूह बन सकते हैं। उदाहरणार्थ यह संभव है कि एक विशेष सामाजिक वर्ग या जाति अथवा समुदाय से संबंधित व्यक्ति एक सामूहिक निकाय के रूप में संगठित न हो। उनमें अभी 'हम' की भावना आनी बाकी हो। परंतु वर्ग और जाति ने समय बीतने के साथ-साथ राजनीतिक दलों को जन्म दिया है। उसी प्रकार भारत के विभिन्न समुदायों के लोगों ने लंबे उपनिवेश-विरोधी संघर्ष के साथ-साथ अपनी पहचान एक सामूहिकता और समूह के रूप में विकसित की है—एक राष्ट्र जिसका मिला-जुला अतीत और साझा भविष्य है। महिला आंदोलन ने महिलाओं के समूह और संगठनों का विचार सामने रखा। ये सभी उदाहरण इस बात की तरफ़ ध्यान खींचते हैं कि किस प्रकार सामाजिक समूह उभरते हैं, परिवर्तित होते हैं और संशोधित होते हैं।

एक सामाजिक समूह में कम से कम निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए—

(क) निरंतरता के लिए दीर्घ स्थायी अंत:क्रिया;
(ख) इन अंत:क्रियाओं का स्थिर प्रतिमान;
(ग) अन्य सदस्यों के साथ एक सी पहचान बनाने के लिए अपनत्व की भावना, अर्थात प्रत्येक व्यक्ति समूह के प्रति और इसके नियमों, अनुष्ठानों और प्रतीकों के प्रति सचेत हो;

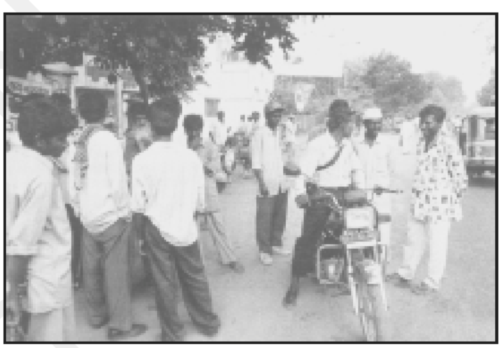

ये किस प्रकार के समूह हैं?

(घ) साझी रुचि;

(ङ) सामान्य मानकों और मूल्यों को अपनाना;

(च) एक परिभाषित संरचना।

यहाँ सामाजिक संरचना का अर्थ, व्यक्तियों अथवा समूहों के बीच नियमित और बार-बार होने वाली अंत:क्रिया के प्रतिमानों से है। अत: एक सामाजिक समूह से तात्पर्य निरंतर अंत:क्रिया करने वाले उन व्यक्तियों से है, जो एक समाज में समान रुचि, संस्कृति, मूल्यों और मानकों को बाँटते हैं।

समूहों के प्रकार

समूहों पर आधारित इस विभाग के अध्ययन से आप जानेंगे कि विभिन्न समाजशास्त्रियों और मानवविज्ञानियों ने समूहों को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया है। तथापि, जो बात आपको प्रभावित करेगी वह यह है कि प्ररूप विज्ञान में भी प्रतिमान होते हैं। अधिकतर मामलों में वे परंपरागत और छोटे समाज तथा एक आधुनिक और बड़े समाज में अपने-अपने

क्रियाकलाप-2

एक नाम ज्ञात कीजिए जो प्रत्येक शीर्षक के अंतर्गत उपयुक्त है।

जाति	एक जाति विरोधी आंदोलन	जाति पर आधारित एक राजनीतिक दल
वर्ग	एक वर्ग पर आधारित आंदोलन	वर्ग पर आधारित एक राजनीतिक दल
महिलाएँ	एक महिला आंदोलन	एक महिला संगठन
जनजाति	एक जनजाति आंदोलन	एक जनजाति / जनजातियों पर आधारित राजनीतिक दल
ग्रामीण	एक पर्यावरण संबंधी आंदोलन	एक पर्यावरण संबंधी संगठन

चर्चा करें कि क्या ये सभी शुरुआत से ही सामाजिक समूह थे और यदि कुछ नहीं थे, तो किस बिंदु पर समाजशास्त्रीय समझ के आधार से हम इनके लिए सामाजिक समूह शब्द का प्रयोग कर सकते हैं।

क्रियाकलाप-3

किशोर आयु समूह की चर्चा करें। क्या यह अर्द्ध समूह अथवा सामाजिक समूह है? क्या जीवन के विशेष चरण के रूप में 'किशोरावस्था' और 'किशोर' जैसे विचार हमेशा से ही मौजूद रहे हैं? परंपरागत समाजों में वयस्कता में बच्चों के प्रवेश को किस प्रकार चिह्नित किया जाता था? समकालीन समय में इस समूह / अर्द्ध समूह को मज़बूत अथवा कमज़ोर बनाने में बाज़ार की रणनीति और विज्ञापनों का क्या कुछ लेना-देना है? एक विज्ञापन को पहचानो जो किशोरों अथवा पूर्व किशोरों को लक्ष्य बनाता है। स्तरीकरण से संबंधित अनुच्छेद पढ़ो और चर्चा करो कि किस प्रकार धनी और निर्धन, उच्च और निम्न वर्ग, भेदभाव और सुविधा प्राप्त जाति के किशोरों के लिए किशोरावस्था विभिन्न तरह का जीवन-अनुभव हो सकती है।

© Not to be republished

समूह बनने के तरीकों में अंतर को दिखाते हैं। जैसाकि पहले बताया गया है, परंपरागत समाजों में नज़दीकी, घनिष्ठ, आमने-सामने की अंत:क्रिया होती है और आधुनिक समाजों में अवैयक्तिक, अनासक्त, दूरस्थ अंत:क्रिया होती है। वे इसी अंतर से प्रभावित हुए थे। तथापि पूर्णत: विरोधाभास शायद वास्तविकता का सटीक वर्णन नहीं है।

प्राथमिक और द्वितीयक सामाजिक समूह

वे सभी समूह जिनसे हम संबंधित होते हैं हमारे लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होते हैं। कुछ समूह हमारे जीवन के कई पक्षों को प्रभावित करते हैं और हमें दूसरों के वैयक्तिक साहचर्य में लाते हैं। 'प्राथमिक समूह' से तात्पर्य लोगों के एक छोटे समूह से है जो घनिष्ठ, आमने-सामने के मेल-मिलाप और सहयोग द्वारा जुड़े होते हैं। प्राथमिक समूहों के सदस्यों में एक-दूसरे से संबंधित होने की भावना होती है। परिवार, ग्राम और मित्रों के समूह प्राथमिक समूहों के उदाहरण हैं।

द्वितीयक समूह आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते हैं और उनमें औपचारिक और अवैयक्तिक संबंध होते हैं। प्राथमिक समूह व्यक्ति उन्मुख होते हैं, जबकि द्वितीयक समूह लक्ष्य उन्मुख। विद्यालय, सरकारी कार्यालय, अस्पताल, छात्र संघ आदि द्वितीयक समूहों के उदाहरण हैं।

समुदाय एवं समाज अथवा संघ

पुराने परंपरागत और कृषक जीवन की नए आधुनिक और शहरी जीवन से उनके विभिन्न सामाजिक संबंधों और जीवन-शैली के आधार पर तुलना करने का विचार शास्त्रीय समाजशास्त्रियों के लेखन की ओर ले जाता है।

'समुदाय' से तात्पर्य उन मानव संबंधों से है, जो बहुत अधिक वैयक्तिक, घनिष्ठ और चिरस्थायी होते हैं, जहाँ एक व्यक्ति की भागीदारी सच्चे मित्रों अथवा एक सुगठित समूह में भले ही परिवार जितनी नहीं परंतु महत्त्वपूर्ण होती है।

इन दो प्रकार के समूहों की तुलना कीजिए

क्रियाकलाप-4

किसी ऐसे संघ के ज्ञापन की प्रति एकत्रित करें जिसे आप जानते हैं या जिसके बारे में खोज कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक निवासी कल्याण संघ, एक महिला संघ, एक स्पोर्ट्स क्लब। आपको इसके लक्ष्यों, उद्देश्यों, सदस्यता और नियंत्रित करने वाले अन्य नियमों की स्पष्ट जानकारी मिल जाएगी। इसकी एक बड़ी पारिवारिक सभा से तुलना कीजिए।

आप यह भी देख सकते हैं कि कई बार, एक औपचारिक समूह के सदस्यों की अंत:क्रिया समय बीतने के साथ अधिक घनिष्ठ हो जाती है और 'बिलकुल परिवार और मित्रों' की तरह हो जाती है। उपरोक्त बात इस बिंदु को सामने लाती है कि संकल्पनाएँ अडिग और स्थिर नहीं हैं। बल्कि ये तो समाज और इसके परिवर्तनों को समझने की चाबियाँ अथवा साधन हैं।

'समाज' अथवा 'संघ' का तात्पर्य हर तरह से 'समुदाय' के विपरीत है, विशेषत: आधुनिक नगरीय जीवन के स्पष्टत: अवैयक्तिक, बाहरी और अस्थायी संबंध। वाणिज्य और उद्योग की आवश्यकता यह है कि एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति से नपा-तुला, युक्तिसंगत एवं निजी हितों के अनुसार हो। हम एक-दूसरे को जानने की अपेक्षा करार अथवा समझौता करते हैं। आप समुदाय और प्राथमिक समूह को समान मान सकते हैं और संघ व द्वितीयक समूह को समतुल्य मान सकते हैं।

अंत:समूह एवं बाह्य समूह

संबंधित होने की भावना अंत:समूह की पहचान बनाती हैं। यह भावना 'हमें' या 'हम' को 'उन्हें' अथवा 'वे' से अलग करती हैं। एक स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे, उस स्कूल में नहीं पढ़ने वाले बच्चों के विरुद्ध एक अंत:समूह बना सकते हैं। क्या आप ऐसे किन्हीं दूसरे समूहों के बारे में सोच सकते हैं?

इसके विपरीत, एक बाह्य समूह वह होता है जिससे एक अंत:समूह के सदस्य संबंधित नहीं होते। एक बाह्य समूह के सदस्यों को अंत:समूह के सदस्यों की ओर से प्रतिकूल व्यवहार का सामना करना पड़ सकता है। प्रवासियों को अकसर बाह्य समूह माना जाता है। हालाँकि, यहाँ भी कौन संबंधित है और कौन संबंधित नहीं की वास्तविक परिभाषा, समय और सामाजिक संदर्भों के साथ बदलती रहती है।

प्रख्यात समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने 1948 में रामपुरा में जनगणना करते समय

क्रियाकलाप-5

दूसरे देशों में या हमारे अपने देश के विभिन्न भागों में रहने वाले प्रवासियों के अनुभवों के बारे में पता लगाएँ।

आप यह जानेंगे कि समूहों में संबंध बदलते और रूपांतरित होते रहते हैं। एक बाह्य समूह के सदस्य माने जाने वाले लोग अंत:समूह के सदस्य बन जाते हैं। क्या आप इतिहास में इस प्रकार की प्रक्रियाओं के बारे में पता लगा सकते हैं?

देखा कि किस प्रकार नए और पुराने प्रवासियों के बीच भेदभाव किया गया था। वे लिखते हैं–

> मैंने ग्रामीणों को दो कथनों का प्रयोग करते सुना जो मुझे महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए–नए प्रवासियों का लगभग तिरस्कृत रूप से **नन्ने मुन्ने बंदावरतु** (कल या परसों आए हुए) कहकर वर्णन किया जाता था जबकि पुराने प्रवासियों का वर्णन **अरशेयिंदा बंदावारू** (बहुत पहले आए हुए) या **खादीम कुलागालू** (पुराने वंश) के रूप में किया गया था (श्रीनिवास 1996 : 33)।

संदर्भ समूह

किसी भी समूह के लोगों के लिए हमेशा ऐसे दूसरे समूह होते हैं जिनको वे अपने आदर्श की तरह देखते हैं और उनके जैसे बनना चाहते हैं। वे समूह जिनकी जीवन शैली का अनुकरण किया जाता है, संदर्भ समूह कहलाते हैं। हम अपने संदर्भ समूहों से संबंधित नहीं होते हैं, पर हम अपने आपको उस समूह से अभिनिर्धारित अवश्य करते हैं। संदर्भ समूह संस्कृति, जीवन शैली, महत्त्वाकांक्षाओं और लक्ष्य प्राप्ति के बारे में जानकारी के महत्त्वपूर्ण स्रोत होते हैं।

औपनिवेशिक समय में कई मध्यवर्गीय भारतीय बिलकुल अंग्रेज़ों की तरह व्यवहार करने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार इन्हें, महत्त्वाकांक्षा रखने वाले समूह के लिए संदर्भ समूह के रूप में देखा जा सकता था। परंतु यह प्रक्रिया लिंग-भेद पर आधारित थी, अर्थात पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग-अलग मापदंड थे। अकसर भारतीय पुरुष अंग्रेज़ पुरुषों की तरह पोशाक धारण करना चाहते थे और उन्हीं की तरह भोजन करना चाहते थे। परंतु वे यह चाहते थे कि भारतीय महिलाएँ अपना रहन-सहन 'भारतीय' ही रखें। या वे यह आकांक्षा रखते थे कि भारतीय महिलाएँ अंग्रेज़ महिलाओं का कुछ रहन-सहन ग्रहण करें पर बिलकुल उनकी तरह न बनें। क्या आप इसे आज भी वैध मानते हैं?

समवयस्क समूह

यह एक प्रकार का प्राथमिक समूह है, जो सामान्यतः समान आयु के व्यक्तियों के बीच अथवा सामान्य व्यवसाय समूह के लोगों के बीच बनता है। समवयस्क दबाव से तात्पर्य अपने समवयस्क साथी द्वारा डाले गए सामाजिक दबाव से है कि व्यक्ति को क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए।

क्रियाकलाप-6

क्या आपके मित्र या आपके आयु समूह के लोग आपको प्रभावित करते हैं? क्या आप अपने कपड़ों, व्यवहार, अपनी पसंद के संगीत, अपनी पसंद की फ़िल्मों के बारे में उनकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से कोई सरोकार रखते हैं? क्या आप इसे सामाजिक दबाव मानते हैं? चर्चा कीजिए।

सामाजिक स्तरीकरण

सामाजिक स्तरीकरण से तात्पर्य भौतिक या प्रतीकात्मक लाभों तक पहुँच के आधार पर समाज में समूहों के बीच की संरचनात्मक असमानताओं के अस्तित्व से है। अंतः स्तरीकरण को सरलतम शब्दों में, लोगों के विभिन्न समूहों के बीच की संरचनात्मक असमानताओं के रूप

में परिभाषित किया जा सकता है। अकसर सामाजिक स्तरीकरण की तुलना धरती की सतह में चट्टानों की परतों से की जाती है। समाज को एक अधिक्रम जिसमें कई परतें शामिल हैं, के रूप में देखा जा सकता है इस अधिक्रम में अधिक कृपापात्र शीर्ष पर और कम सुविधापात्र तल के निकट हैं।

समाज के संगठन में स्तरीकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण, शक्ति और लाभ की असमानता समाजशास्त्र में केंद्रीय है। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक गृह के जीवन का प्रत्येक पक्ष स्तरीकरण से प्रभावित होता है। स्वास्थ्य, दीर्घायु, सुरक्षा, शैक्षणिक सफलता, कार्य में उपलब्धि और राजनीतिक प्रभाव यह सभी अवसर, व्यवस्थित तरीकों से असमान रूप में वितरित हैं।

मानव समाजों में ऐतिहासिक रूप में, स्तरीकरण की चार मूल व्यवस्थाएँ मौजूद रही हैं—दासता, जाति, इस्टेट और वर्ग। दास प्रथा असमानता का चरम रूप है जिसमें वास्तव में कुछ व्यक्तियों पर दूसरों का अधिकार होता है। यह छुट-पुट रूप में कई कालों और स्थानों पर मौजूद रही है, परंतु दास प्रथा के दो प्रमुख उदाहरण हैं; प्राचीन ग्रीस और रोम तथा 18वीं एवं 19वीं शताब्दियों में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिणी राज्य। एक औपचारिक संस्था के रूप में, दास प्रथा को धीरे-धीरे जड़ से उखाड़ा गया। परंतु, हमारे यहाँ अभी भी बंधुआ मज़दूरी पाई जाती है, यहाँ तक कि उसमें बच्चे भी शामिल हैं। इस्टेट सामंतवादी यूरोप की विशेषता थी। हम यहाँ इस्टेट का विस्तृत वर्णन नहीं करेंगे परंतु सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्थाओं के रूप में जाति और वर्ग का बहुत ही संक्षिप्त रूप में उल्लेख करेंगे। सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में वर्ग, जाति, लिंग के बारे में हम अगली पुस्तक *समाज का बोध* (एन.सी.ई.आर.टी., 2006) में पढ़ेंगे।

जाति

जाति पर आधारित स्तरीकरण व्यवस्था में व्यक्ति की स्थिति पूरी तरह से जन्म द्वारा मिली हुई प्रस्थिति पर आधारित होती है न कि उन पदों पर जो व्यक्ति ने अपने जीवन में प्राप्त किए होते हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि एक वर्ग समाज में उपलब्धि पर कोई योजनाबद्ध प्रतिबंध नहीं होता जो कि प्रजाति और लिंग सरीखी प्रदत्त प्रस्थिति द्वारा थोपा जाता है। हालाँकि एक जातिवादी समाज में जन्म द्वारा प्रदत्त प्रस्थिति एक व्यक्ति की स्थिति को, एक वर्ग समाज की तुलना में ज़्यादा पूर्ण ढंग से परिभाषित करती है।

परंपरागत भारत में, विभिन्न जातियाँ सामाजिक श्रेष्ठता का अधिक्रम बनाती थी। जाति संरचना में प्रत्येक स्थान दूसरों के संबंध में इसकी शुद्धता या अपवित्रता के द्वारा परिभाषित था। इसके पीछे यह विश्वास था कि पुरोहित जाति ब्राह्मण जोकि सबसे अधिक पवित्र हैं, बाकी सबसे श्रेष्ठ हैं और पंचम, जिनको कई बार 'बाह्य जाति' कहा गया, सबसे निम्न हैं। परंपरागत व्यवस्था को सामान्यत: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के चार वर्णों के रूप में संकल्पित किया गया है। वास्तविकता में, व्यवसाय- आधारित अनगिनत जाति समूह होते हैं जिन्हें जाति कहा जाता है।

भारत में जाति व्यवस्था में समय के साथ–साथ बहुत से परिवर्तन आए हैं। कथित उच्च जातियों की पवित्रता को बनाए रखने के लिए अंत:विवाह और अनुष्ठानों में कथित निम्न जाति के सदस्यों की अनुपस्थिति बहुत आवश्यक मानी जाती थी। नगरीकरण द्वारा लाए गए परिवर्तनों ने इसे अनिवार्य रूप से चुनौती दी। प्रसिद्ध समाजशास्त्री ए.आर. देसाई के निम्न प्रेक्षण को पढ़ें।

भारत में नगरीकरण के दूसरे सामाजिक प्रभावों पर उनकी टिप्पणी इस प्रकार है–

> आधुनिक उद्योग आधुनिक शहरों को अस्तित्व में लाए जो सर्वदेशीय होटलों, रेस्तरांओं, रंगमंचों, ट्रामों, बसों, रेलों से मधुमक्खी के छत्ते की तरह भरे पड़े थे। विशुद्ध होटल और रेस्तरां जिन्हें वेतन भोगियों और मध्यम वर्ग के लिए बनाया गया था, शहरों में सभी जातियों और मतों के लोगों से भर गए... ट्रेनों और बसों में, व्यक्ति अकसर निम्न वर्ग के व्यक्ति के साथ सफर करते हैं... तथापि, यह नहीं माना जाना चाहिए कि जाति लुप्त हो गई हैं (देसाई 1975 : 248)।

हालाँकि परिवर्तन हुआ था, परंतु भेदभाव को दूर करना इतना आसान नहीं था, जैसाकि उपरोक्त कथन कहता है।

मिल में, उस प्रकार का खुला भेदभाव न हो जैसाकि गाँवों में होता है, परंतु निजी अंत:क्रिया के अनुभव दूसरी कहानी बताते हैं। परमार ने देखा...

> वे हमारे हाथों से पानी भी नहीं पीते और हमसे व्यवहार करते समय कई बार गाली–गलौजवाली भाषा का प्रयोग करते हैं। ये इसलिए है क्योंकि वे यह महसूस करते हैं और विश्वास रखते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं। वर्षों से ऐसा ही चला आ रहा हैं। हम कितनी भी अच्छी वेशभूषा धारण करें, उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वे कुछ चीज़ों को अपनाने के लिए तैयार नहीं हैं (फ्रांको 2004 : 150)।

आज भी बहुत अधिक जातिगत भेदभाव उपस्थित है। पर साथ ही लोकतंत्र की कार्य प्रणाली ने जाति व्यवस्था को प्रभावित किया है। जाति हित समूह के रूप में मज़बूत हुई है। हमने भेदभावग्रस्त जातियों को समाज में अपने लोकतंत्रीय अधिकारों के प्रयोग के लिए संघर्ष करते भी देखा है।

वर्ग

वर्ग का वर्णन करने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। यहाँ हम मार्क्स, वैबर और प्रकार्यवाद के केंद्रीय विचारों का केवल संक्षेप में उल्लेख करेंगे। मार्क्स के सिद्धांतों में सामाजिक वर्ग की परिभाषा इस आधार पर होती है कि उस वर्ग और उत्पादन के साधनों के बीच क्या संबंध हैं। यह प्रश्न पूछे जा सकते हैं कि क्या समूह भूमि अथवा कारखानों सरीखे उत्पादन के साधनों के स्वामी हैं? अथवा क्या वे किसी वस्तु के नहीं केवल अपने श्रम के स्वामी हैं? वैबर ने जीवन अवसर शब्द का प्रयोग किया है जिसका तात्पर्य बाज़ार क्षमता की सामर्थ्य के

© NCERT not to be republished

प्रतिफल और लाभ से है। वैबर तर्क देते हैं कि असमानता आर्थिक संबंधों पर आधारित हो सकती है। परंतु यह प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति पर भी आधारित हो सकती है।

सामाजिक स्तरीकरण का प्रकार्यवादी सिद्धांत, प्रकार्यवाद की आस्था या सामान्य पूर्वकल्पना के साथ आरंभ होता है कि कोई भी समाज 'वर्गहीन' या 'संस्तरणमुक्त' नहीं है। मुख्य प्रकार्यक आवश्यकता सामाजिक स्तरीकरण की वैश्विक उपस्थिति का वर्णन करती है कि समाज द्वारा व्यक्ति को सामाजिक ढाँचे में स्थापित और गातिशील करने के लिए किन आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता है। अत: सामाजिक असमानता या स्तरीकरण अनजाने में विकसित किया गया वह साधन है जिसके द्वारा समाज यह निश्चित करता है कि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थितियों को जान बूझकर सबसे योग्य व्यक्तियों द्वारा भरा जाए। क्या यह सत्य है?

एक परंपरागत जाति व्यवस्था में, सामाजिक अधिक्रम निश्चित व कठोर होता हैं और इन समाजों में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता है। इसके विपरीत आधुनिक वर्ग व्यवस्था खुली है और उपलब्धि पर आधारित है। लोकतंत्रीय समाजों में, सर्वाधिक वंचित वर्ग और जाति के किसी व्यक्ति को सर्वोच्च पद पर पहुँचने से कोई भी कानूनन रोक नहीं सकता।

क्रियाकलाप-7

स्वर्गीय राष्ट्रपति के.आर. नारायणन के जीवन के विषय में और अधिक पता लगाएँ। इस संदर्भ में प्रदत्त और अर्जित की गई प्रस्थिति, जाति और वर्ग की संकल्पना की विवेचना करें।

उपलब्धि की इस प्रकार की कहानियाँ वाकई विद्यमान है और ये असीम प्रेरणा का स्रोत होती हैं। यद्यपि अधिकांश हिस्से के लिए जाति व्यवस्था की संरचना अभी तक बनी हुई है। यहाँ तक कि पश्चिमी समाजों में भी, सामाजिक गतिशीलता का समाजशास्त्रीय अध्ययन, संपूर्ण गतिशीलता के आदर्श प्रतिरूप से काफ़ी दूर है। समाजशास्त्र को जाति व्यवस्था और भेदभाव की निरंतरता, दोनों की चुनौतियों के प्रति संवेदनशील होना पड़ेगा। विशेषकर वे, जो व्यवस्था के निम्न स्तरों पर हैं, न केवल सामाजिक बल्कि आर्थिक रूप से भी वंचित स्थिति में हैं। ग्रामीण भारत में आधे से अधिक अनुसूचित जनजाति जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रहती है। यह अनुपात अनुसूचित जाति के लिए थोड़ा कम, लगभग 43 प्रतिशत है और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए इससे भी कम लगभग 34 प्रतिशत है (देशपांडे 2003:114)।

प्रस्थिति और भूमिका

इन दो संकल्पनाओं 'प्रस्थिति' और 'भूमिका' को अकसर युगल संकल्पनाओं की तरह देखा जाता है। प्रस्थिति समाज या एक समूह में एक स्थिति है। प्रत्येक समाज और प्रत्येक समूह में ऐसी कई स्थितियाँ होती हैं और प्रत्येक व्यक्ति ऐसी कई स्थितियों पर अधिकार रखता है।

अत: प्रस्थिति से तात्पर्य सामाजिक स्थिति और इन स्थितियों से जुड़े निश्चित अधिकारों और कर्तव्यों से है। उदाहरण के लिए, माँ की

एक प्रस्थिति होती है, जिसमें आचरण के कई मानक होते हैं और साथ ही निश्चित ज़िम्मेदारियाँ और विशेषाधिकार भी होते हैं।

भूमिका प्रस्थिति का सक्रिय या व्यवहारात्मक पक्ष है। प्रस्थितियाँ ग्रहण की जाती हैं, एवं भूमिकाएँ निभाई जाती हैं। हम यह कह सकते हैं कि प्रस्थिति एक संस्थागत भूमिका है। यह वह भूमिका है जो समाज में या समाज के विशेष संघों में से किसी में भी नियमित, मानकीय और औपचारिक बन चुकी है।

यह सुस्पष्ट होना चाहिए कि एक आधुनिक ज़टिल समाज में, जैसा कि हमारा समाज है, एक व्यक्ति अपने जीवन में कई विभिन्न प्रस्थितियों को ग्रहण करता है। एक स्कूली छात्र के रूप में आप अपने अध्यापक के छात्र, पंसारी के लिए ग्राहक, बस चालक के लिए यात्री, सहोदरों के लिए भाई या बहन, डॉक्टर के लिए मरीज़ हो सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हम इस सूची को जितना चाहे बढ़ा सकते हैं। समाज जितना छोटा और सरल होगा, एक व्यक्ति की उतनी ही कम प्रकार की प्रस्थितियाँ होंगी।

हम देखते हैं एक आधुनिक समाज में व्यक्ति की बहुत सी प्रस्थितियाँ होती हैं जिसे समाजशास्त्रीय रूप में प्रस्थिति समुच्चय का नाम दिया गया है। व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न चरणों में अलग-अलग प्रस्थितियाँ ग्रहण करते हैं। एक पुत्र, पिता बन जाता है, पिता, दादा बन जाता है और फिर परदादा एवं यह क्रम इसी तरह चलता रहता है। इसे प्रस्थिति क्रम कहते हैं क्योंकि इसका अर्थ जीवन के अनेक चरणों में प्राप्त की गई प्रस्थितियों से है जो एक क्रम में आती हैं।

प्रदत्त प्रस्थिति एक सामाजिक स्थिति है, जो एक व्यक्ति जन्म से अथवा अनैच्छिक रूप से ग्रहण करता है। प्रदत्त प्रस्थिति का सामान्य आधार आयु, जाति, प्रजाति और नातेदारी है। सरल और परंपरागत समाज प्रदत्त प्रस्थिति से चिह्नित होते हैं। दूसरी तरफ़, अर्जित प्रस्थिति वह सामाजिक स्थिति है जो एक व्यक्ति अपनी इच्छा, अपनी क्षमता, उपलब्धियों, सद्गुणों और चयन से प्राप्त करता है। अर्जित प्रस्थिति का सामान्य आधार शैक्षणिक योग्यता, आय और व्यावसायिक विशेषज्ञता है। आधुनिक समाज को उपलब्धि के आधार पर आँका जाता है। इसके सदस्यों को प्रतिष्ठा उनकी उपलब्धियों के आधार पर प्रदान की जाती है। आपने अकसर यह वाक्यांश सुना होगा—"आपको अपने आप को साबित करना है।" परंपरागत समाजों में आपकी प्रस्थिति जन्म से परिभाषित और निर्धारित होती थी तथापि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उपलब्धि पर आधारित आधुनिक समाजों में भी, प्रदत्त प्रस्थिति महत्त्व रखती है।

प्रस्थिति और प्रतिष्ठा अंत:संबंधित शब्द हैं। प्रत्येक प्रस्थिति के अपने कुछ अधिकार और मूल्य होते हैं। मूल्य किसी व्यक्ति से उसके कार्यों या उनके अनुपालन से नहीं बल्कि सामाजिक स्थिति से जुड़े होते हैं। प्रस्थिति या पदाधिकार से जुड़े मूल्य के प्रकार को प्रतिष्ठा कहते हैं। अपनी प्रतिष्ठा के आधार पर लोग अपनी प्रस्थिति को ऊँचा या नीचा दर्जा दे सकते हैं। एक दुकानदार की तुलना में एक

© not to be republished

क्रियाकलाप-8

आपके समाज में किस प्रकार की नौकरियाँ प्रतिष्ठित मानी जाती हैं? इनकी अपने मित्रों के साथ तुलना करें। समानताओं और विभिन्नताओं की चर्चा करें। इसके कारणों को समझने की कोशिश करें।

डॉक्टर की प्रतिष्ठा ज़्यादा होगी चाहे उसकी आय कम ही क्यों न हो। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किस व्यवसाय को प्रतिष्ठित माना जाता है, यह विचार समाज और समय के साथ बदलता रहता है।

लोग अपनी भूमिकाओं को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार निभाते हैं जो कि भूमिका को ग्रहण करना और भूमिकाओं को निभाना है। एक बच्चा इस आधार पर व्यवहार करना सीखता है कि दूसरे लोग उसके व्यवहार को किस प्रकार देखते व आँकते हैं।

भूमिका संघर्ष एक या अधिक प्रस्थितियों से जुड़ी भूमिकाओं की असंगतता है। यह तब होता है जब दो या अधिक भूमिकाओं से विरोधी अपेक्षाएँ पैदा होती हैं। एक सामान्य उदाहरण मध्यम वर्गीय कामकाजी महिला का है जिसे घर पर माँ तथा पत्नी और कार्य स्थल पर कुशल व्यावसायिक की भूमिका निभानी पड़ती है।

क्रियाकलाप-9

पता लगाएँ कि घर का नौकर और निर्माण करने वाला मज़दूर किस प्रकार भूमिका संघर्ष का सामना करते हैं।

यह एक सामान्य मान्यता है कि पुरुष भूमिका संघर्ष का सामना नहीं करते। समाजशास्त्र, जिसमें आनुभविक और तुलनात्मक दोनों विषय आते है, इससे अलग राय रखता हैं।

> खासी मातृवंश पुरुषों के लिए बहुत अधिक भूमिका संघर्ष पैदा करता है। वे एक तरफ़ अपने जन्मजात घर और दूसरी तरफ़ पत्नी और बच्चों के प्रति ज़िम्मेदारी में बँट जाते हैं। वे अपने बच्चों की निष्ठा को शासित करने के आवश्यक अधिकार और यहाँ तक कि मृत्यु के बाद, स्वयं अर्जित संपत्ति को अपने बच्चों को देने के अधिकार से भी वंचित महसूस करते हैं...
>
> खासी महिलाओं को यह दबाव और अधिक रूप में प्रभावित करता है। एक महिला कभी भी पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हो सकती है कि उसके पति को, अपनी बहन का घर, अपनी पत्नी के घर की अपेक्षा अधिक अनुकूल नहीं लगता (नोंगब्री 2003:190)।

भूमिका स्थिरीकरण, समाज के कुछ सदस्यों के लिए कुछ विशिष्ट भूमिकाओं को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए अकसर पुरुष कमाने वाली और महिलाएँ घर चलाने वाली रूढ़िबद्ध भूमिकाओं को निभाते हैं। सामाजिक भूमिकाओं और प्रस्थितियों को अकसर स्थिर और अपरिवर्तनीय रूप में देखा जाता है जोकि गलत है। यह महसूस किया गया है कि व्यक्ति उन अपेक्षाओं को समझने लगता है जो एक संस्कृति में सामाजिक स्थिति से जुड़ी होती हैं। वह उन भूमिकाओं को उसी प्रकार निभाता है जिस प्रकार वे परिभाषित की जाती हैं।

क्रियाकलाप-10

समाज के प्रभावशाली हिस्से द्वारा सामाजिक रूप से निर्धारित भूमिकाओं का उल्लंघन या अतिक्रमण करने वाले लोगों को नियंत्रित व दंडित करने की कोशिश के बारे में समाचार पत्रों में छपी रिपोर्टों को एकत्रित कीजिए।

समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक भूमिकाओं को ग्रहण करते हैं और उन्हें निभाना सीखते हैं। तथापि, इस मत को गलत रूप से लिया जाता है। यह बताता है कि व्यक्ति भूमिकाओं को बनाने अथवा सौदा करने की बजाय, सिर्फ़ उन्हें ग्रहण करता है। वास्तव में, समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य कर्ता की भूमिका निभा सकते हैं, वे केवल निष्क्रिय वस्तु नहीं हैं जो निर्देशों की प्रतीक्षा करते हैं। व्यक्ति सामाजिक अंत:क्रिया की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया द्वारा सामाजिक भूमिकाओं को समझने और अपनाने लगते हैं। यह विवेचना शायद आपको व्यक्ति और समाज के संबंधों को समझने में मदद करेगी, जिसके बारे में हम पहले अध्याय में पढ़ चुके हैं।

भूमिकाएँ और प्रस्थितियाँ न ही स्थिर होती हैं और न ही किसी के द्वारा प्रदान की जाती हैं। लोग भूमिकाओं और प्रस्थितियों में जाति या प्रजाति अथवा लिंग पर आधारित भेदभाव के खिलाफ़ संघर्ष करते हैं दूसरी तरफ़ समाज में कुछ विभाग ऐसे होते हैं जो इन परिवर्तनों का विरोध करते हैं। उसी प्रकार व्यक्तियों द्वारा भूमिकाओं का उल्लंघन करने पर उन्हें प्राय: दंडित किया जाता है। अत: समाज न केवल भूमिकाओं और प्रस्थितियों के साथ बल्कि सामाजिक नियंत्रण के साथ भी कार्य करता है।

समाज व सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण समाजशास्त्र में सामान्यत: सबसे ज़्यादा प्रयोग की जाने वाली संकल्पनाओं में से एक है। इसका तात्पर्य उन अनेक साधनों से है जिनके द्वारा समाज अपने उद्दंड या उपद्रवी सदस्यों को पुन: राह पर लाता है।

आप यह जानेंगे कि किस प्रकार संकल्पनाओं के अर्थ के बारे में समाजशास्त्र में अलग-अलग दृष्टिकोण और विवाद हैं। आप यह भी जानेंगे कि प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों ने समाज को विशेष रूप से सामंजस्यपूर्ण समझा और विरोधी समाजशास्त्रियों ने समाज को मुख्य रूप से असमान, असंगत और अत्याचारी समझा। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार कुछ समाजशास्त्रियों ने व्यक्ति और समाज पर अधिक ध्यान केंद्रित किया और दूसरों ने सामूहिकताओं पर जैसे वर्ग, प्रजातियाँ, जातियाँ।

प्रकार्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य है–(1) व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियमित करने के लिए बल प्रयोग करना, (2) समाज में व्यवस्था बनाए रखने के लिए मूल्यों और प्रतिमानों को लागू करना। सामाजिक नियंत्रण को एक तरफ़ व्यक्तियों या समूहों के पथभ्रष्ट व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए संचालित किया जाता है और दूसरी तरफ़, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक साहचर्य को बनाए रखने के लिए व्यक्तियों और समूहों के तनाव और विरोध को

© Not to be republished

दूर करने में इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार समाज में स्थिरता के लिए सामाजिक नियंत्रण को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

संघर्षवादी सिद्धांतवादी अकसर सामाजिक नियंत्रण को ऐसे साधनों के रूप में अधिक देखेंगे जिनके द्वारा समाज के प्रभावी वर्ग का बाकी समाज पर नियंत्रण लागू किया जा सकता है। स्थिरता को समाज के एक भाग द्वारा दूसरे भाग पर प्रभुत्व के रूप में देखा जाएगा। इसी प्रकार कानून को समाज में शक्तिशालियों और उनके हितों के औपचारिक दस्तावेज़ के रूप में देखा जाएगा।

सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य सामाजिक प्रक्रियाओं, तकनीकों और रणनीतियों से है जिनके द्वारा व्यक्ति या समूह के व्यवहार को नियमित किया जाता है। इसका अर्थ व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियमित करने के लिए बल प्रयोग से और समाज में व्यवस्था के लिए मूल्यों व प्रतिमानों को लागू करने से है।

सामाजिक नियंत्रण अनौपचारिक या औपचारिक हो सकता है। जब नियंत्रण के संहिताबद्ध, व्यवस्थित और अन्य औपचारिक साधन प्रयोग किए जाते हैं तो यह औपचारिक सामाजिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है। ये औपचारिक सामाजिक नियंत्रण के माध्यम और साधन होते हैं उदाहरण के लिए, कानून और राज्य। आधुनिक समाज में, सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक नियंत्रण का अंतिम और निःसंदेह प्राचीनतम साधन है—शारीरिक बल प्रयोग... यहाँ तक कि आधुनिक लोकतंत्र के उदार विचारों वाले समाजों में भी, चरम तर्क हिंसा है। कोई भी राज्य पुलिस बल या इसके समान किसी अन्य सशस्त्र बल के बिना नहीं रह सकता... किसी भी क्रियाशील समाज में हिंसा को मितव्ययता से और अंतिम उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है, प्रतिदिन के सामाजिक नियंत्रण के लिए बल प्रयोग का केवल भय ही काफ़ी होता है... जब मनुष्य ऐसे गहन समूहों में रहते या काम करते हैं, जिसमें वे व्यक्तिगत रूप से जाने जाते हैं और जिसके प्रति वे व्यक्तिगत निष्ठा की भावना से बँधे होते हैं (वह प्रकार जिसे समाजशास्त्री प्राथमिक समूह कहते हैं), तो वास्तविक या संभावित पथभ्रष्ट लोगों को राह पर लाने के लिए नियंत्रण के प्रबल और तीक्ष्ण साधनों का प्रयोग किया जाता है... सामाजिक नियंत्रण का एक पक्ष, जिस पर ज़ोर देना आवश्यक है, यह तथ्य है कि यह अकसर कपटपूर्ण दावे पर आधारित होता है... एक छोटा लड़का अपने समवयस्क समूह पर अपने बड़े भाई, जिसे ज़रूरत के समय किसी विरोधी को पीटने के लिए बुलाया जा सकता है, द्वारा महत्त्वपूर्ण नियंत्रण कर सकता है। ऐसे किसी भाई की अनुपस्थिति में, भाई की कल्पना करना भी संभव है। यह छोटे लड़के के जन संपर्क कौशल का प्रश्न होगा कि क्या वह अपनी कल्पना को वास्तविक नियंत्रण में बदलने में सफल होगा या नहीं (बर्जर 84-90)।

क्या आपने किसी छोटे बच्चे को यह कहकर दूसरे बच्चे को डराते देखा या सुना है कि, "मैं अपने बड़े भाई को बता दूँगा?"
क्या आप अन्य उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं?

> **क्रियाकलाप-11**
>
> क्या आप अपने जीवन से ऐसे उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं कि 'अशासकीय' सामाजिक नियंत्रण किस प्रकार कार्य करता है? क्या आपने कक्षा में या अपने समवयस्क समूह में यह निरीक्षण किया है कि एक बच्चा जो दूसरे से थोड़ा भी अलग तरह का व्यवहार करता है, उससे किस प्रकार बर्ताव किया जाता है? क्या आपने ऐसी घटनाएँ देखी हैं जब बच्चों को उनके समवयस्क समूह अन्य बच्चों की तरह बनने के लिए तंग करते हैं?

के औपचारिक साधनों और माध्यमों पर ज़ोर दिया जाता है।

प्रत्येक समाज में, एक दूसरे प्रकार का सामाजिक नियंत्रण होता है, जिसे अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है। यह व्यक्तिगत, अशासकीय और असंहिताबद्ध होता है। इसमें मुस्कान, चेहरे बनाना, शारीरिक भाषा, आलोचना, उपहास, हँसी आदि सम्मिलित होते हैं। एक ही समाज में इनके प्रयोग में काफ़ी भिन्नताएँ हो सकती हैं। दैनिक जीवन में ये बहुत प्रभावशाली होते हैं।

फिर भी, कुछ मामलों में सामाजिक नियंत्रण की अनौपचारिक विधियाँ अनुरूपता या आज्ञाकारिता लागू करने में असमर्थ हो सकती हैं। अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न माध्यम होते हैं अर्थात परिवार, धर्म, नातेदारी आदि। क्या आपने इज़्ज़त के लिए हत्या के बारे में सुना है? नीचे दी गई समाचार पत्र रिपोर्ट को पढ़ें और इसमें शामिल सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न माध्यमों को पहचानें।

स्वीकृति पुरस्कार या दंड का एक ढंग है जो सामाजिक रूप से अपेक्षित व्यवहार को पुनःस्थापित करता है। सामाजिक नियंत्रण सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। समाज के सदस्यों को अच्छे और अपेक्षित व्यवहार के लिए पुरस्कृत किया जा सकता है। दूसरी तरफ़, नियमों को लागू करने के लिए और विचलन को राह पर लाने के लिए

> **अंतरजातीय विवाह करने पर भाई ने बहन की हत्या की**
>
> ...पुलिस के अनुसार 19 वर्षीय एक लड़की...जब अस्पताल में सो रही थी तब उसके बड़े भाई ने उसका सिर कलम कर उसकी हत्या कर दी जिसे 'इज़्ज़त के लिए हत्या' (*ऑनर किलिंग*) कहा जाता है।
>
> उन्होंने कहा कि लड़की... द्वारा जाति के बाहर विवाह करने के बाद 16 दिसंबर को उसके भाई ... ने उस पर चाकू से हमला किया था और उसका अस्पताल में इलाज चल रहा था। उन्होंने बताया कि वह और उसका प्रेमी 10 दिसंबर को घर से भाग गए थे और शादी करने के बाद 16 दिसंबर को अपने घर वापस आ गए थे। उसके अभिभावकों ने इस विवाह का विरोध किया था।
>
> पंचायत ने भी युगल पर दबाव डालने की कोशिश की थी, पर उन्होंने अलग रहने से मना कर दिया था।

नकारात्मक स्वीकृतियों का प्रयोग भी किया जाता है।

विचलन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो समाज या समूह के अधिकतर सदस्यों के मूल्यों या आदर्शों के अनुसार नहीं होती है। विचलन को मोटे तौर पर विभिन्न संस्कृतियों या उप संस्कृतियों में अंतर करने वाले मानकों और मूल्यों के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार विचलन के विचार को एक समय से दूसरे समय में चुनौतियाँ मिलती हैं और ये परिवर्तित होते रहते हैं। उदाहरण के लिए, एक ही समाज में अंतरिक्षयात्री बनने की इच्छा रखने वाली महिला को एक समय में तो विचलक माना जाएगा और दूसरे समय में उसी समाज में उसकी प्रशंसा की जाएगी। आप पहले ही जानते हैं कि समाजशास्त्र किस प्रकार सामान्य बौद्धिक ज्ञान से भिन्न है। इस अध्याय में चर्चा की गई विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाएँ समाज की समाजशास्त्रीय समझ को बढ़ाने में आपकी मदद करेंगी।

शब्दावली

विरोधी सिद्धांत–एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण जो मानव समाजों में उपस्थित तनावों, विभाजनों और संघर्षरत रुचियों पर ध्यान केंद्रित करता है। संघर्षवादी सिद्धांतकार मानते हैं कि समाज में संसाधनों की कमी और उनका मूल्य विरोध उत्पन्न करता है क्योंकि समूह इन संसाधनों पर पहुँच और नियंत्रण स्थापित करने के लिए संघर्ष करते हैं। कई संघर्षवादी सिद्धांतकार मार्क्स के लेखन से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं।

प्रकार्यवाद–एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण जो इस धारणा पर आधारित है कि सामाजिक घटनाओं को उन कार्यों के रूप में सबसे अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है जो वे निभाते हैं। अर्थात समाज की निरंतरता में, वे जो योगदान करते हैं एवं एक जटिल व्यवस्था के रूप में समाज को, जिसके विभिन्न भाग एक दूसरे के साथ कार्य करते हैं, को समझने की आवश्यकता है।

पहचान–एक व्यक्ति या समूह के चरित्र की विशेषताएँ जो यह बताती हैं कि वे कौन हैं और उनके लिए क्या अर्थपूर्ण है। पहचान के कुछ स्रोत हैं–लिंग, राष्ट्रीयता या प्रजातीयता, सामाजिक वर्ग।

उत्पादन के साधन–वे साधन जिनके द्वारा समाज में भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, जिनमें न केवल तकनीक बल्कि उत्पादकों के परस्पर सामाजिक संबंध भी सम्मिलित हैं।

व्यष्टि समाजशास्त्र और समष्टि समाजशास्त्र–आमने-सामने अंत:क्रिया की परिस्थितियों में प्रतिदिन के व्यवहार का अध्ययन सामान्यत: व्यष्टि समाजशास्त्र कहलाता है। व्यष्टि समाजशास्त्र में विश्लेषण व्यक्तिगत स्तर पर या छोटे समूहों में होता है। यह समष्टि समाजशास्त्र से भिन्न है जिसका सरोकार बड़ी सामाजिक व्यवस्था से होता है, जैसे राजनीतिक व्यवस्था या आर्थिक व्यवस्था। हालाँकि ये भिन्न दिखाई देते हैं, पर ये घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं।

जन्म संबंधी–किसी के जन्मस्थान या जन्मकाल से संबंधित।

मानक–व्यवहार के नियम जो एक संस्कृति के मूल्यों को प्रतिबिंबित करते हैं या उसे मूर्तरूप देते हैं, जो या तो व्यवहार के एक दिए गए प्रकार को सुझाते या वर्जित करते हैं। मानकों के पीछे हमेशा एक या दूसरे प्रकार की स्वीकृति होती है, जो अनौपचारिक निंदा से शारीरिक दंड या प्राणदंड में बदलती रहती हैं।

स्वीकृति–पुरस्कार या दंड की प्रणाली जो सामाजिक रूप में अपेक्षित व्यवहार को पुन:स्थापित करती है।

अभ्यास

1. समाजशास्त्र में हमें विशिष्ट शब्दावली और संकल्पनाओं के प्रयोग की आवश्यकता क्यों होती है?
2. समाज के सदस्य के रूप में आप समूहों में और विभिन्न समूहों के साथ अंत:क्रिया करते होंगे। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन समूहों को आप किस प्रकार देखते हैं?
3. अपने समाज में उपस्थित स्तरीकरण की व्यवस्था के बारे में आपका क्या प्रेक्षण है? स्तरीकरण से व्यक्तिगत जीवन किस प्रकार प्रभावित होते हैं?
4. सामाजिक नियंत्रण क्या है? क्या आप सोचते हैं कि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक नियंत्रण के साधन अलग-अलग होते हैं? चर्चा करें।
5. विभिन्न भूमिकाओं और प्रस्थितियों को पहचानें जिन्हें आप निभाते हैं और जिनमें आप स्थित हैं। क्या आप सोचते हैं कि भूमिकाएँ और प्रस्थितियाँ बदलती हैं? चर्चा करें कि ये कब और किस प्रकार बदलती हैं।

© NCERT not to be republished

सहायक पुस्तकें

बर्जर, एल. पीटर. 1976. *इंविटेशन टू सोशियोलॉजी : ए ह्यूमनिस्टिक पर्सपैक्टिव.* पेंगुइन, हारमंडस्वर्थ।

बोटोमोर, टॉम. और रॉबर्ट, निस्बैट. 1978. *ए हिस्ट्री ऑफ़ सोशियोलॉजीकल एनालिसिस.* बेसिक बुक्स, न्यूयार्क।

बोटोमोर, टॉम. 1972. *सोशियोलॉजी.* विंटेज बुक्स, न्यूयार्क।

देशपांडे, सतीश. 2003. *कंटेंप्रेरी इण्डिया : ए सोशियोलॉजीकल व्यू*. वाइकिंग, दिल्ली।

फरनांडो, फ्रांको. मैक्वान, ज्योत्सना. और रामनाथन, सुगुना. 2004. *जर्नीज़ टू फ्रीडम दलित नैरेटिव्स.* साम्य, कोलकाता।

गिडिंस, एंथोनी. 2001. *सोशियोलॉजी.* चौथा संस्करण, पॉलिटी प्रेस, केंब्रिज।

जयराम, एन. 1987. *इंट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी.* मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली।

नोंगब्री, तिपलुत. 2003. 'जैंडर एंड द खासी फैमिली स्ट्रक्चर : द मेघालय सक्सैशन टू सैल्फ़ एक्वायर्ड प्रोपर्टी एक्ट, 1984', रेगे, शर्मिला. (सं). *सोशियोलॉजी ऑफ़ जैंडर–द चैलेंज ऑफ़ फ़ैमिनिस्ट सोशियोलॉजीकल नॉलेज.* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 182-194.

श्रीनिवास, एम.एन. 1996. *विलेज, कास्ट, जैंडर एंड मैथड*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

अध्याय 3

सामाजिक संस्थाओं को समझना

1

परिचय

यह पुस्तक समाज और व्यक्ति की अंत:क्रिया के बारे में चर्चा से आरंभ होती है। हमने देखा कि हममें से प्रत्येक का एक व्यक्ति की तरह समाज में एक स्थान या स्थिति होती है। प्रत्येक की एक प्रस्थिति और एक या अनेक भूमिकाएँ होती हैं लेकिन साधारणत: इनका चुनाव करना हमारे नियंत्रण में नहीं होता। ये भूमिकाएँ चलचित्रों की भूमिकाओं की तरह नहीं होती जिन्हें कोई अभिनेता अपनी इच्छा से स्वीकार या अस्वीकार कर सके। यहाँ सामाजिक संस्थाएँ होती हैं जो प्रतिबंधित और नियंत्रित, दंडित और पुरस्कृत करती हैं। सामाजिक संस्थाएँ राज्य की तरह बृहत या परिवार की तरह लघु हो सकती हैं। इस अध्याय में हमारा परिचय सामाजिक संस्थाओं से होगा और यह भी बताया जाएगा कि समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवविज्ञान में इनका अध्ययन किस प्रकार होता है। इस अध्याय में कुछ प्रमुख क्षेत्रों जिनमें महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्थाएँ जैसे (क) परिवार, विवाह और नातेदारी, (ख) राजनीति, (ग) अर्थव्यवस्था, (घ) धर्म एवं (ङ) शिक्षा होती है, इनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

विस्तृत अर्थ में संस्था उसे कहा जाता है जो स्थापित या कम से कम कानून या प्रथा द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार कार्य करती है और उसके नियमित तथा निरंतर कार्य चालन को इन नियमों को जाने बिना समझा नहीं जा सकता। संस्थाएँ व्यक्तियों पर प्रतिबंध लगाती हैं, साथ ही ये व्यक्तियों को अवसर भी प्रदान करती हैं।

संस्थाओं को स्वयं में लक्ष्य के रूप में भी देखा जा सकता है। वास्तव में लोगों ने परिवार, धर्म, राज्य या यहाँ तक कि शिक्षा को भी अपने आप में एक लक्ष्य के रूप में माना है।

क्रियाकलाप-1

लोगों द्वारा परिवार, धर्म, राज्य के लिए बलिदान देने के उदाहरणों के बारे में सोचें।

हम पहले ही देख चुके हैं कि समाजशास्त्र के अंतर्गत संकल्पनाओं को समझने में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ और विरोधाभास हैं। हमारा परिचय प्रकार्यवादी और संघर्षवादी दृष्टिकोण से भी कराया गया है। हमने यह भी देखा है कि कैसे उन्होंने एक ही विषय-वस्तु को विभिन्नता से देखा, जैसे स्तरीकरण या सामाजिक नियंत्रण। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सामाजिक संस्थाओं के बारे में भी विभिन्न प्रकार की समझ है।

एक प्रकार्यवादी दृष्टि सामाजिक संस्थाओं को सामाजिक मानकों, आस्थाओं, मूल्यों और समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निर्मित संबंधों की भूमिका के जटिल ताने-बाने के रूप में देखती है। सामाजिक संस्थाएँ समाजिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विद्यमान होती हैं। इस प्रकार समाज में हमें औपचारिक और अनौपचारिक सामाजिक संस्थाएँ देखने को मिलती हैं। जैसे परिवार और धर्म अनौपचारिक सामाजिक संस्था के जबकि कानून और शिक्षा (औपचारिक) औपचारिक सामाजिक संस्थाओं के उदाहरण हैं।

एक संघर्षवादी दृष्टि की मान्यता है कि समाज में सभी व्यक्तियों का स्थान समान नहीं है। सभी सामाजिक संस्थाएँ चाहे वे पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, कानूनी या शैक्षणिक हों, समाज के प्रभावशाली अनुभागों चाहे वे वर्ग, जाति, जनजाति या लिंग के संदर्भ में हों, के हित में संचालित होती हैं। प्रभावशाली सामाजिक अनुभागों का न केवल राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं पर प्रभुत्व होता हैं अपितु वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि शासक वर्ग के विचार ही समाज के विचार बन जाएँ। यह विचार इस से बहुत भिन्न हैं कि किसी समाज की सामान्य आवश्यकताएँ होती हैं।

जैसे-जैसे आप इस अध्याय का आगे अध्ययन करेंगे, देखें कि क्या आप ऐसे उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं कि कैसे सामाजिक संस्थाएँ व्यक्तियों को नियंत्रित करती हैं तथा अवसर भी प्रदान करती हैं। आप यह भी देखें कि क्या वे समाज के विभिन्न अनुभागों पर असमान प्रभाव डालती हैं। उदाहरण के लिए हम पूछ सकते हैं, "कैसे परिवार पुरुषों और महिलाओं को नियंत्रित करने के साथ-साथ अवसर भी प्रदान करता है?" या "राजनीतिक या कानूनी संस्थाएँ विशेष सुविधा प्राप्त और अधिकार विहीन व्यक्तियों को कैसे प्रभावित करती हैं?"

2

परिवार, विवाह और नातेदारी

शायद परिवार जितनी 'नैसर्गिक' कोई अन्य सामाजिक संस्था नहीं दिखाई देती है। प्रायः हम यह मानने को तैयार रहते हैं कि सभी परिवार वैसे ही होते है जैसे परिवारों में हम रहते हैं। कोई और सामाजिक संस्था इतनी व्यापक और अपरिवर्तनीय नहीं दिखती है। समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान ने कई दशकों तक विभिन्न संस्कृतियों में यह दर्शाने के लिए क्षेत्रीय अनुसंधान किए कि कैसे विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न स्वरूप होते हुए भी परिवार, विवाह और नातेदारी संस्थाएँ सभी समाजों में महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने

यह भी दर्शाया कि किस प्रकार परिवार (निजी क्षेत्र) आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक (सार्वजनिक क्षेत्रों) से संबंधित है। यह आपको पुनः याद दिला सकता है कि विभिन्न विषयों से लेन-देन की आवश्यकता क्यों पड़ती है जिसकी चर्चा हमने अध्याय 1 में की है।

प्रकार्यवादियों के अनुसार परिवार अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है जो समाज की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करते हैं और सामाजिक व्यवस्था को स्थायी बनाने में सहायता करते हैं। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण का तर्क है कि यदि महिलाएँ परिवार की देखभाल करें और पुरुष परिवार की जीविका चलाएँ तो आधुनिक औद्योगिक समाज श्रेष्ठ कार्य निष्पादन करते हैं। तथापि भारत में किए गए अध्ययन यह सुझाव देते हैं कि अर्थव्यवस्था के औद्योगिक प्रतिमानों में परिवारों को मूल होने की आवश्यकता नहीं है (सिंह 1993:83)। फिर भी यह एक उदाहरण है जिससे पता चलता है कि एक समाज के अनुभवों पर आधारित प्रवृत्ति का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

प्रकार्यवादियों के अनुसार मूल परिवार को औद्योगिक समाज की आवश्यकताएँ पूरी करने वाली एक सर्वोत्तम साधन संपन्न इकाई के रूप में देखा जाता है। ऐसे परिवार में घर का एक सदस्य घर से बाहर कार्य करता है और दूसरा सदस्य घर और बच्चों की देखभाल करता है। व्यावहारिक रूप से मूल परिवार में भूमिकाओं के इस विशिष्टीकरण में पति की जीविका चलाने वाले 'सहायक' की तथा पत्नी की घरेलू संरचना में 'प्रभावशाली' भावनात्मक भूमिका शामिल रहती है (गिडिंस 2001)। इस दृष्टि पर न केवल अनुचित लिंगभेद के कारण प्रश्न किया जा सकता है अपितु, इतिहास और अनेक संस्कृतियों के आनुभविक अध्ययन दर्शाते हैं कि यह सत्य नहीं है। वास्तव में आप कार्य और अर्थव्यवस्था की चर्चा में देखेंगे कि वस्त्र निर्यात जैसे समकालीन उद्योग में महिलाएँ श्रमिक बल का बहुत बड़ा हिस्सा हैं। इस तरह का विभाजन यह भी सुझाता है कि पुरुष ही आवश्यक रूप से परिवार के मुखिया हैं। नीचे दिया गया बॉक्स दर्शाता है कि यह अनिवार्यतः सत्य नहीं है।

महिला-प्रधान घर

जब पुरुष नगरीय क्षेत्रों में चले जाते हैं तो महिलाओं को हल चलाना पड़ता है और खेतों के कार्यों का प्रबंध करना पड़ता है। कई बार वे अपने परिवार की एकमात्र भरण-पोषण करने वाली बन जाती हैं। ऐसे परिवारों को महिला-प्रधान घर कहा जाता है। विधवापन भी ऐसी पारिवारिक व्यवस्था बना सकता है। यह स्थिति पुरुषों द्वारा दूसरा विवाह करने तथा अपनी पत्नियों, बच्चों और अन्य आश्रितों को धन न भेजने के कारण भी बन सकती है। ऐसी स्थिति में महिला को अपने परिवार की देखभाल सुनिश्चित करनी पड़ती है। दक्षिण-पूर्व महाराष्ट्र और उत्तरी आंध्र प्रदेश में कोलम जनजाति समुदाय में महिला-प्रधान घर एक स्वीकृत मानक है।

© N not to be republished

परिवार के स्वरूपों में परिवर्तन

भारत में एक मुख्य बहस मूल परिवार से संयुक्त परिवार की ओर बदलाव के बारे में है। हमने पहले भी देखा है कि समाजशास्त्र कैसे सामान्य बौद्धिक प्रभावों पर प्रश्न खड़ा करता है। तथ्य यह है कि भारत में मूल परिवार पहले से ही, विशेषत: अभावग्रस्त जातियों और वर्गों में, हमेशा विद्यमान रहे हैं।

समाजशास्त्री ए.एम. शाह का कथन है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में संयुक्त परिवार में निरंतर वृद्धि हुई है। उनके अनुसार इसका मुख्य कारक था भारत में औसत आयु में वृद्धि होना। पुरुषों की आयु में यह वृद्धि 1941-50 से 1981-85 के दौरान 32.5 से 55.4 वर्ष तथा महिलाओं की आयु में 31.7 से 55.7 वर्ष हो गई थी। इसके परिणामस्वरूप बुज़ुर्ग लोगों (60 वर्ष या उससे अधिक आयु) की संख्या में काफ़ी वृद्धि हो गई थी। शाह लिखते हैं कि–

> हमें यह पूछना होगा कि ये वृद्ध किस तरह के घरों में रहते हैं? मैं यह मानता हूँ कि उनमें से अधिकतर संयुक्त घरों में रहते हैं (शाह 1998)।

यह पुन: एक व्यापक सामान्यीकरण है। लेकिन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण हमें इस सामान्य बौद्धिक प्रभाव पर आँख बंद करके विश्वास करने के विरुद्ध सावधान करता है कि संयुक्त परिवार तेज़ी से कम हो रहे है। यह हमें सावधानीपूर्वक तुलनात्मक और आनुभविक अध्ययनों की आवश्यकता के प्रति भी सतर्क करता है।

अध्ययनों से पता चलता है कि किस तरह विभिन्न समाजों में परिवार के विभिन्न स्वरूप पाए जाते हैं। आवास के नियम के अनुसार कुछ समाज अपने विवाह और पारिवारिक प्रथाओं में मातृस्थानिक हैं और कुछ पितृस्थानिक। मातृस्थानिक परिवार में नव-दंपति पत्नी के अभिभावकों के साथ रहते हैं जबकि दूसरी स्थिति में नव-दंपति पति के अभिभावकों के साथ रहते हैं। पितृतंत्रात्मक परिवार संरचनाओं में अधिकार और प्रभाव पुरुषों के पास होते हैं जबकि मातृतंत्रात्मक परिवारों में निर्णय लेने में महिलाओं की प्रमुख भूमिका होती है। मातृवंशीय समाज मौजूद हैं पर मातृतंत्रीय समाजों के बारे में यह दावा नहीं किया जा सकता।

परिवार अन्य सामाजिक क्षेत्रों और पारिवारिक परिवर्तनों से संबंधित होते हैं

हमारे दैनिक जीवन में प्राय: हम परिवार को अन्य क्षेत्रों जैसे आर्थिक या राजनीतिक से भिन्न और अलग देखते हैं। फिर भी आप स्वयं देखेंगे कि परिवार, गृह, उसकी संरचना और मानक, बाकी समाज से गहरे जुड़े हुए हैं। एक रोचक उदाहरण जर्मन एकीकरण के अज्ञात परिणामों का है। 1990 के दशक में एकीकरण के बाद जर्मनी में विवाह प्रणाली में तेज़ी से गिरावट आई क्योंकि नए जर्मन राज्य ने एकीकरण से पूर्व परिवारों को प्राप्त संरक्षण और कल्याण की सभी योजनाएँ रद्द कर दी थीं। आर्थिक असुरक्षा की बढ़ती भावना के कारण लोग विवाह से इंकार करने लगे। इसे अनजाने परिणाम के रूप में भी जाना जा सकता है (अध्याय 1)।

© NCERT not to be republished

परिवारों और आवासों में अंतर पर ध्यान दीजिए

कार्य और गृह

इस प्रकार बड़ी आर्थिक प्रक्रियाओं के कारण परिवार और नातेदारी परिवर्तित और रूपांतरित होते रहते हैं लेकिन परिवर्तन की दिशा सभी देशों और क्षेत्रों में हमेशा एक समान नहीं हो सकती। हालाँकि इस परिवर्तन का यह भी अर्थ नहीं है कि पिछले मानक और सरंचना पूरी तरह नष्ट हो गई हैं। परिवर्तन और निरंतरता सहवर्ती होते हैं।

परिवार किस तरह लिंगवादी है?

इस विश्वास के कारण कि लड़का वृद्धावस्था में अभिभावकों की सहायता करेगा और लड़की विवाह के बाद दूसरे घर चली जाएगी, परिवारों में लड़कों पर अधिक धन खर्च किया जाने लगा। जीवविज्ञान के इस तथ्य के बावजूद कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के जीवित रहने के अवसर

क्रियाकलाप-2

एक तेलुगू अभिकथन है–'एक लड़की का पालन करना दूसरे के आँगन में पौधे को पानी देने के बराबर है।' ऐसी या इसके विपरीत कहावतों का पता लगाइए। चर्चा कीजिए कि कैसे प्रसिद्ध कहावतों में समाज की सामाजिक व्यवस्था की झलक मिलती है।

भारत में 1901-2001 के बीच लिंगानुपात

वर्ष	*लिंगानुपात*	*वर्ष*	*लिंगानुपात*
1901	972	1951	946
1911	964	1961	941
1921	955	1971	930
1931	950	1981	934
1941	945	1991	926
2001			(927)*

* 2001 के दौरान भारत में 0-6 समूह में लड़कियों का लिंगानुपात 927 था।

कन्या भ्रूण हत्या की घटनाओं से लिंगानुपात में एकाएक गिरावट होने लगी। बाल लिंगानुपात 1991 में प्रति एक हज़ार लड़कों पर 934 से कम हो कर 2001 में 927 हो गया। बाल लिंगानुपात में प्रतिशत गिरावट अत्यधिक चौंकाने वाली है। समृद्ध राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थिति और भी अधिक खराब है। पंजाब में प्रति एक हज़ार लड़कों के अनुपात में लड़कियों का अनुपात 793 हो गया है। पंजाब और हरियाणा के कुछ ज़िलों में यह 700 से भी कम हो गया है।

बेहतर होते हैं, भारत में अल्पायु समूह में लड़कियों की मृत्युदर लड़कों से कहीं अधिक थी।

विवाह संस्था

ऐतिहासिक रूप से विभिन्न समाजों में विवाह के व्यापक विभिन्न रूप पाए जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार के कार्य निष्पादन के लिए भी जाना जाता है। वास्तव में विवाह-साथी की खोज का तरीका अनेक विस्मयकारी साधनों और प्रथाओं को उजागर करता है।

क्रियाकलाप-3

विभिन्न समाजों द्वारा विवाह के लिए साथियों की तलाश किए जाने वाले विभिन्न तरीकों का पता लगाइए।

विवाह के रूप

विवाह के अनेक रूप हैं। इन रूपों को विवाह करने वाले साथियों की संख्या और कौन किससे विवाह कर सकता है, को नियंत्रित किए जाने वाले नियमों के आधार पर पहचाना जा सकता है। वैधानिक रूप से विवाह करने वाले साथियों की संख्या के संदर्भ में विवाह के दो रूप पाए जाते हैं-(1) एकविवाह (2) बहुविवाह। एकविवाह प्रथा एक व्यक्ति को एक समय में एक ही साथी तक सीमित रखती हैं। इस व्यवस्था में किसी भी समय में पुरुष केवल

एक पत्नी और स्त्री केवल एक पति रख सकती हैं। यहाँ तक कि जहाँ बहुविवाह की अनुमति है वहाँ भी एकविवाह ही ज़्यादा प्रचलित है।

प्रायः कई समाजों में व्यक्तियों को पुनः विवाह की अनुमति पहले साथी की मृत्यु या तलाक के बाद दी जाती है लेकिन वे एक समय में एक से अधिक साथी नहीं रख सकते। ऐसे विवाह को क्रमिक एकविवाह कहा जाता है। अधिकांश भागों में पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुषों द्वारा पुनर्विवाह करने का नियम हैं लेकिन आप सभी जानते हैं कि उच्च जाति की हिंदू महिलाओं के लिए पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं थी और 19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों में विधवा पुनर्विवाह एक मुख्य विषय था। शायद आपको इस बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं होगी कि आज आधुनिक भारत में महिलाओं की आबादी का लगभग 10 प्रतिशत और पचास वर्ष से अधिक आयु की 55 प्रतिशत महिलाएँ विधवा हैं (चेन 2000:353)।

बहुविवाह-प्रथा एक समय में एक से अधिक साथी होने का द्योतक है और इसमें या तो बहुपत्नी-प्रथा (एक पति और दो या अधिक पत्नियाँ) अथवा बहुपति-प्रथा (एक पत्नी और दो या अधिक पति) रूप होता है। प्रायः जहाँ आर्थिक स्थितियाँ कठोर होती हैं वहाँ बहुपति-प्रथा समाज की एक प्रतिक्रिया हो सकती है क्योंकि ऐसी स्थितियों में एक पुरुष पत्नी और बच्चों का पर्याप्त भरण-पोषण नहीं कर सकता है। अत्यधिक निर्धनता की अवस्थाएँ भी एक समूह पर अपनी आबादी सीमित रखने के लिए दबाव डालती हैं।

विवाह निश्चित करना : नियम और निर्देश

कुछ समाजों में विवाह-साथी के चयन का निर्णय अभिभावकों / संबंधियों द्वारा किया जाता हैं और कुछ अन्य समाजों में साथी का चयन करने में व्यक्तियों को अपेक्षाकृत कुछ स्वतंत्रता होती है।

अंतर्विवाह और बहिर्विवाह के नियम

कुछ समाजों में यह प्रतिबंध अति सूक्ष्म होते हैं जबकि कुछ अन्य समाजों में किस व्यक्ति से विवाह किया जा सकता है और किससे नहीं, के नियम अधिक स्पष्ट और विशेष रूप से परिभाषित होते हैं। विवाह-साथी की योग्यता/अयोग्यता नियंत्रित करने वाले नियमों के आधार पर विवाह के रूपों को अंतर्विवाह और बहिर्विवाह के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

अंतर्विवाह में व्यक्ति उसी सांस्कृतिक समूह में विवाह करता है जिसका वह पहले से ही सदस्य है, उदाहरण के लिए जाति। इसके विपरीत बहिर्विवाह में व्यक्ति अपने समूह से बाहर विवाह करता है। अंतर्विवाह और बहिर्विवाह कुछ नातेदारी इकाइयों को संदर्भ के रूप में लिया जाता है, जैसे; गोत्र, जाति और नस्ल, प्रजातीय या धार्मिक समूह। भारत में विशेषतया उत्तरी भारत के कुछ भागों में गाँव बहिर्विवाह प्रचलित हैं। गाँव बहिर्विवाह यह सुनिश्चित करता है कि जिन परिवारों में लड़कियों का विवाह किया जाए वे घर से काफ़ी दूर हों। यह व्यवस्था लड़की के नातेदारों के हस्तक्षेप के बगैर उसके ससुराल में सुचारू परिवर्तन और समायोजन को सुनिश्चित करती है। भौगोलिक दूरी और पितृवंशीय व्यवस्था के असमान संबंध यह सुनिश्चित करते हैं कि

विवाहित लड़कियाँ अपने अभिभावकों के पास बार-बार न जा पाएँ। इस प्रकार जन्म-स्थान से अलग होना एक दुखदायी अवसर है और यह लोक गीतों की विषय-वस्तु है जो विदाई के दुख को चित्रित करते हैं।

पिताजी हम चिड़ियों के झुंड की तरह हैं
हम दूर उड़ जाएँगी : और हमारी उड़ान बहुत लंबी होगी,
हमें नहीं मालूम कि हम कहाँ जाएँगी,
पिताजी, मेरी पालकी आपके घर से नहीं जा सकती,
(क्योंकि द्वार बहुत छोटा है)
बेटी, मैं एक ईंट निकाल दूँगा
(तुम्हारी पालकी के लिए द्वार बड़ा करने के लिए)
तुम्हें अपने घर अवश्य जाना होगा।
(चानना 1993: डब्लू.एस.26)

मैं अपनी बच्ची को पालने में झुलाता हूँ, और
उसके सुंदर बालों में अंगुलियाँ फिरा रहा हूँ,
एक दिन दूल्हा आएगा और तुम्हें दूर ले जाएगा
ज़ोर से ढोल-नगाड़े बजते हैं
और मधुर शहनाई बज रही है
एक अजनबी का बेटा मुझे लेने आ गया है
मेरी सहेलियो, अपने खिलौने लेकर आओ
चलो हम खेलेंगी क्योंकि अब मैं कभी नहीं
खेल पाऊँगी जब मैं एक अजनबी के घर
चली जाऊँगी। (दुबे 2001 : 94)

क्रियाकलाप-4

शादी से संबंधित विभिन्न गीतों को इकट्ठा कीजिए। चर्चा कीजिए कि ये किस तरह शादियों में सामाजिक परिवर्तनों और लिंग संबंधों को प्रतिबिंबित करते हैं।

कुछ बुनियादी संकल्पनाओं विशेषतः परिवार, नातेदारी और विवाह को परिभाषित करना

परिवार प्रत्यक्ष नातेदारी संबंधों से जुड़े व्यक्तियों का एक समूह है जिसके बड़े सदस्य बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व लेते हैं। नातेदारी बंधन व्यक्तियों के बीच के वे सूत्र होते हैं जो या तो विवाह के माध्यम से या वंश परंपरा के माध्यम से रक्त संबंधियों (माता-पिता, बहन-भाई, संतान आदि) को जोड़ते हैं। विवाह को दो वयस्क (पुरुष एवं स्त्री) व्यक्तियों के बीच लैंगिक संबंधों की सामाजिक स्वीकृति और अनुमोदन के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। जब दो व्यक्तियों का विवाह हो जाता है तो वे परस्पर नातेदार बन जाते हैं। इस प्रकार वैवाहिक बंधन भी व्यापक क्षेत्र में लोगों को जोड़ते हैं। विवाह के माध्यम से अभिभावक, भाई-बहन तथा अन्य रक्त संबंधी जीवन-साथी

क्रियाकलाप-5

क्या आपने कभी वैवाहिक विज्ञापन देखे हैं? अपनी कक्षा को समूहों में विभाजित कीजिए और विभिन्न समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं तथा इंटरनेट को देखिए। अपने निष्कर्षों पर चर्चा कीजिए। क्या आप सोचते हैं कि अंतर्विवाह आज भी प्रचलित मानक है? विवाह की पसंद को समझने में यह आपकी कैसे सहायता करता है? अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि यह समाज के किस प्रकार के परिवर्तनों की झलक देता है?

के रिश्तेदार बन जाते हैं। जन्म के परिवार को जन्म का परिवार (*फ़ेमिली ऑफ़ ओरियेंटेशन*) कहा जाता है और जिस परिवार में व्यक्ति का विवाह होता है उसे प्रजनन का परिवार (*फ़ेमिली ऑफ़ प्रोक्रिएशन*) कहा जाता है। 'रक्त' के माध्यम से बने नातेदारों को समरक्त नातेदार और विवाह के माध्यम से बने नातेदारों को वैवाहिक नातेदार कहा जाता है। अगले अनुभाग में कार्य और आर्थिक संस्थाओं पर चर्चा में आप देखेंगे कि कैसे परिवार और आर्थिक जीवन गहन रूप से अंत:संबंधित हैं।

3

कार्य और आर्थिक जीवन

कार्य क्या है?

बच्चे और छोटे विद्यार्थी के रूप में हम कल्पना करते हैं कि जब हम बड़े होंगे तो किस प्रकार का 'कार्य' करेंगे। यहाँ पर 'कार्य' स्पष्ट रूप से सवेतन रोज़गार का द्योतक है। आधुनिक समय में यह 'कार्य' का सर्वाधिक समझ में आने वाला अर्थ है।

वास्तव में यह एक अत्यधिक सरलीकृत विचार है। अनेक प्रकार के कार्य सवेतन रोज़गार के विचार की पुष्टि नहीं करते। उदाहरण के लिए, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में किए जाने वाले अधिकांश कार्य प्रत्यक्षत: किसी औपचारिक रोज़गार आँकड़ों में नहीं गिने जाते। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का अर्थ है नियमित रोज़गार के क्षेत्र से परे किया जाने वाला कार्य-व्यवहार। इसमें कभी-कभी किए गए कार्य या सेवा के बदले नगद भुगतान किया जाता है लेकिन इसमें वस्तुओं या सेवाओं का प्रत्यक्ष आदान-प्रदान भी अकसर किया जाता है।

हम कार्य को शारीरिक और मानसिक परिश्रमों के द्वारा किए जाने वाले ऐसे सवैतनिक या अवैतनिक कार्यों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिनका उद्देश्य मानव की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना है।

ऐसा कोई कार्य नहीं था जिसे टिनी की नानी ने जीवन की किसी न किसी अवस्था में आज़माया न हो। अपना कप उठाने की आयु से ही उसने प्रतिदिन दो वक्त भोजन और पहनने के वस्त्र के बदले लोगों के घरों में विभिन्न तरह के बेमेल कार्य करना आरंभ कर दिया था। बेमेल कार्यों का सही अर्थ क्या है ये वे ही जान सकते हैं जिन्होंने हँसने और दूसरे बच्चों के साथ खेलने की आयु में वे कार्य किए हैं। बच्चे का झुनझुना हिलाने से लेकर स्वामी के सिर की मालिश करने तक सभी नीरस कार्य 'बेमेल कार्य' में आ सकते हैं। (चुगताई 2004:125)

अपने प्रेक्षण या साहित्य से या यहाँ तक कि फ़िल्मों से भी इस प्रकार किए गए विभिन्न प्रकार के 'कार्यों' का पता लगाइए और चर्चा कीजिए।

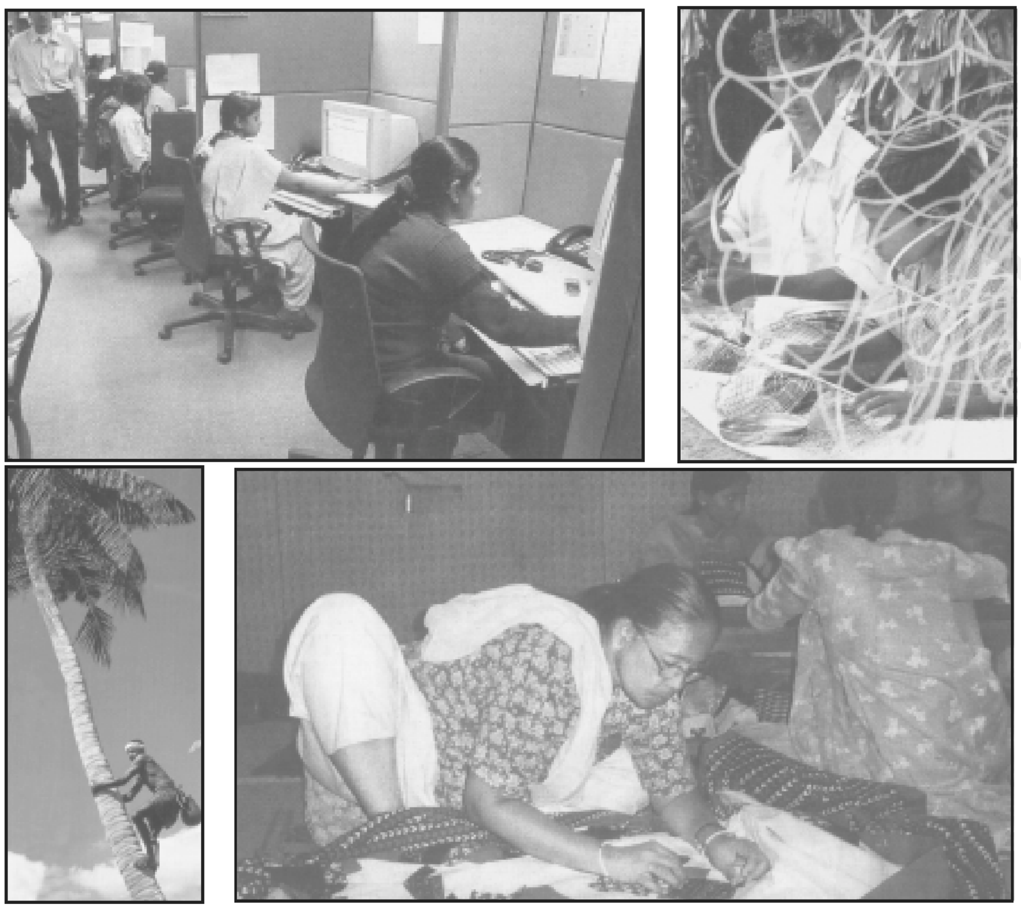

कार्यों के प्रकार

> **क्रियाकलाप-6**
>
> ग्राम आधारित व्यवसायों में लगे भारतीयों की संख्या ज्ञात कीजिए और उन व्यवसायों की एक सूची बनाइए।

कार्य के आधुनिक रूप और श्रम विभाजन

पूर्व-आधुनिक समाज में अधिकतर लोग खेतों में कार्य करते थे या पशुओं की देखभाल करते थे। औद्योगिक रूप से विकसित समाज में जनसंख्या का बहुत छोटा भाग कृषि कार्यों में लगा हुआ है और स्वयं कृषि का भी औद्योगीकरण हो गया है। इसका कार्य मानव द्वारा करने की अपेक्षा अधिकांशत: मशीनों द्वारा किया जाने लगा है। भारत जैसे देश में आज भी अधिकतर जनसंख्या ग्रामीण और कृषि कार्यों में या अन्य ग्राम आधारित व्यवसायों में लगी हुई है।

भारत में और भी कई प्रवृत्तियाँ हैं, उदाहरण के लिए सेवा क्षेत्र का विस्तार।

आधुनिक समाजों की अर्थव्यवस्था की एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, अत्यधिक जटिल श्रम विभाजन। कार्य असंख्य विभिन्न व्यवसायों में विभाजित हो गया है जिनमें लोग विशेषज्ञ हैं। पारंपरिक समाजों में गैर कृषि कार्य को हस्तकौशल की दक्षता के साथ जोड़ा जाता था। हस्तकौशल लंबे प्रशिक्षण के माध्यम से सीखा जाता था और सामान्यत: श्रमिक उत्पादन प्रक्रिया के आरंभ से अंत तक सभी कार्य करता था।

आधुनिक समाज ने भी कार्य की स्थिति में परिवर्तन देखा है। औद्योगीकरण से पूर्व, अधिकतर कार्य घर पर किए जाते थे और कार्य पूरा करने में परिवार के सभी सदस्य सामूहिक रूप से हाथ बँटाते थे। औद्योगिक प्रौद्योगिकी में विकास, जैसे बिजली और कोयले से मशीन संचालन ने घर और कार्य को अलग करने में योगदान दिया। पूँजीपति उद्योगपतियों के कारखाने, औद्योगिक विकास का केंद्रबिंदु बन गए।

क्रियाकलाप-7

ज्ञात करें कि हाल ही के वर्षों में क्या भारत में सेवा क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है। ये क्षेत्र कौन-कौन से हैं?

क्रियाकलाप-8

क्या आपने मुख्य बुनकर को कार्य करते देखा है? ज्ञात करें कि एक शाल बनाने में कितना समय लगता है।

क्रियाकलाप-9

अपने खाने वाले भोजन, रहने वाले मकान में प्रयुक्त सामग्री और पहनने वाले वस्त्रों की सूची बनाइए। ज्ञात कीजिए कि इन्हें किसने और कैसे बनाया।

उद्योगों में नौकरी करने वाले लोग विशिष्ट कार्यों को करने के लिए प्रशिक्षित थे और इस कार्य के बदले उन्हें वेतन मिलता था। प्रबंधक कार्यों का निरीक्षण करते थे क्योंकि उनका कार्य श्रमिक की उत्पादकता बढ़ाना और अनुशासन बनाए रखना था।

आधुनिक समाजों की एक मुख्य विशेषता है परस्पर आर्थिक निर्भरता का असीमित विस्तार। हम सभी बहुत से अन्य श्रमिकों पर निर्भर करते हैं जो हमारे जीवन को बनाए रखने वाले उत्पादों और सेवाओं के लिए संपूर्ण विश्व में फैले हुए हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो आधुनिक समाजों में अधिकतर लोग अपने भोजन व रहने वाले मकान का या अपने उपभोग की भौतिक वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते हैं।

कार्य रूपांतरण

औद्योगिक प्रक्रियाएँ उन सरल संक्रियाओं में विभाजित हो गईं जिनका सही समय निर्धारण, संगठन और निगरानी की जा सकती थी। थोक उत्पादन के लिए थोक बाज़ारों की आवश्यकता होती है। साथ ही उत्पादन की प्रक्रिया में कई नवपरिवर्तन हुए। शायद इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण

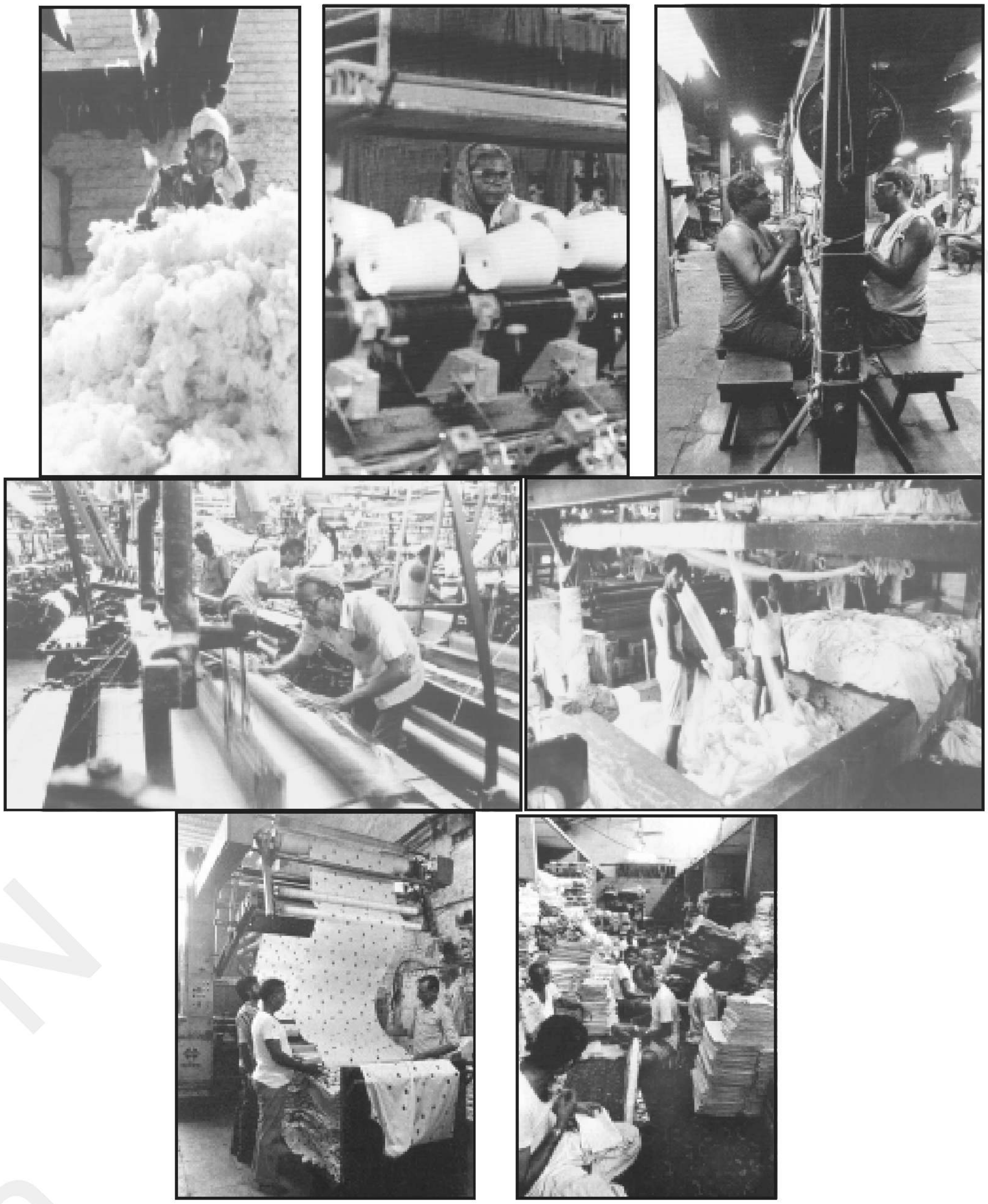

चित्रों के दो समुच्चयों में दिए गए उत्पादन के दो विभिन्न प्रकारों की चर्चा करें
कारखाने में कपड़ा उत्पादन

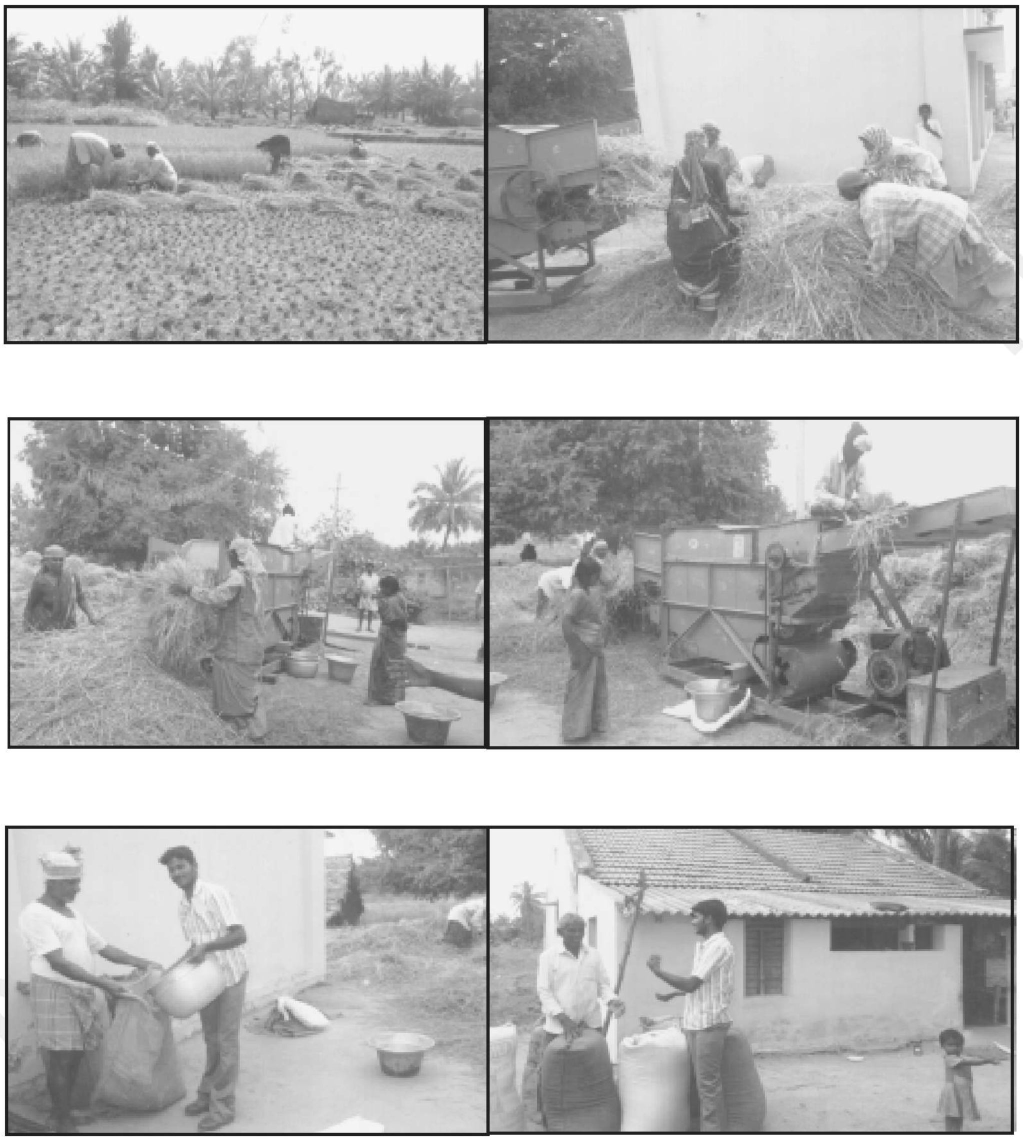

गाँव में धान की कटाई

स्वचलित उत्पादन की कड़ियों (*मूविंग असेंबली लाइन*) का निर्माण था। आधुनिक औद्योगिक उत्पादन के लिए महँगे उपकरणों और निगरानी व्यवस्थाओं के माध्यम से कर्मचारियों की निरंतर निगरानी करना आवश्यक है।

पिछले कई दशकों से 'उदार उत्पादन' और 'कार्य के विकेंद्रीकरण' की तरफ़ झुकाव हुआ है। यह तर्क दिया जाता है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में व्यवसाय और देशों के बीच प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हो रही है इसलिए व्यवसाय संघ के लिए बदलती बाज़ार अवस्थाओं के अनुकूल उत्पादन को संगठित करना आवश्यक हो गया है। नयी व्यवस्था कैसे कार्य करती है और श्रमिकों पर इसका क्या प्रभाव पड़ सकता है, इसे समझने के लिए बंगलौर में किए गए एक वस्त्र उद्योग के अध्ययन के एक भाग को पढ़िए–

> उद्योग बड़ी आपूर्ति शृंखला का एक अनिवार्य भाग होता है और इस प्रकार निर्माता की स्वतंत्रता उस सीमा तक ही सीमित होती है। डिज़ाइनर से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक वास्तव में सैकड़ों से अधिक संक्रियाएँ होती हैं। इस शृंखला में केवल पंद्रह संक्रियाएँ ही निर्माता के हाथ में होती हैं। वेतन वृद्धि को लेकर किए गए किसी भी गहन आंदोलन से निर्माता अपने कार्यों को अन्य स्थानों पर ले जाएँगे जो यूनियन के नेताओं की पहुँच से दूर होगा... चाहे यह विद्यमान न्यूनतन मजूदरी अदायगी का मामला हो या इसमें आगे महत्त्वपूर्ण वेतन वृद्धि का। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात है फुटकर विक्रेता का समर्थन प्राप्त करना ताकि उच्चतम वेतन संरचना और उसके प्रभावशाली कार्यान्वयन के लिए सरकार और स्थानीय एजेंसियों पर दबाव बनाया जा सके। इस प्रकार यहाँ पर विचार अंतरराष्ट्रीय विचार मंच बनाने का है (राय चौधरी 2005 :2254)।

उपर्युक्त रिपोर्ट का सावधानीपूर्वक अध्ययन करें। देखें कि उत्पादन के नए संगठन तथा देश से बाहर उपभोक्ताओं के एक निकाय ने उत्पादन की अर्थव्यवस्था और राजनीति को किस प्रकार बदल दिया है।

4

राजनीति

राजनीतिक संस्थाओं का सरोकार समाज में शक्ति के बँटवारे से है। सामाजिक संस्थाओं को समझने में दो संकल्पनाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये हैं–शक्ति और सत्ता। शक्ति व्यक्तियों या समूहों द्वारा दूसरों के विरोध करने के बावजूद अपनी इच्छा पूरी करने की योग्यता है। इसका अभिप्राय है कि जिनके पास शक्ति होती है वे ऐसा करते हैं क्योंकि दूसरों के पास शक्ति नहीं होती है। किसी समाज में निश्चित मात्रा में शक्ति होती हैं और यदि कुछ लोगों के पास यह है तो दूसरों के पास नहीं होगी। दूसरे शब्दों में, एक व्यक्ति या समूह के पास शक्ति पृथकता में नहीं होती बल्कि यह दूसरों से संबंधित होती है।

शक्ति की यह अभिधारणा स्पष्ट रूप से विस्तृत है और यह परिवार में बड़ों के द्वारा बच्चों को घरेलू ज़िम्मेदारियों में लगाने से लेकर विद्यालय में मुख्य अध्यापक द्वारा अनुशासन

लागू करने तक, कारखाने के मुख्य प्रबंधक द्वारा प्रबंधकों को कार्य आबंटित करने से लेकर अपने दलों के कार्यक्रमों को नियंत्रित करने वाले राजनीतिक नेताओं तक फैला हुआ है। मुख्य अध्यापक को विद्यालय में अनुशासन बनाए रखने की शक्ति है। राजनीतिक दल के अध्यक्ष को दल से किसी सदस्य को निकालने की शक्ति है। प्रत्येक मामले में, व्यक्ति या समूह को उस सीमा तक शक्ति प्राप्त है कि दूसरों को उनकी इच्छा का पालन करना होता है। इस अर्थ में राजनीतिक क्रियाओं या राजनीति का सरोकार शक्ति से है।

लेकिन अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु यह शक्ति कैसे लागू होती है? क्यों कुछ लोग दूसरों के आदेशों का पालन करते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर 'सत्ता' की संबंधित संकल्पना के संदर्भ में प्राप्त किए जा सकते हैं। शक्ति का उपयोग सत्ता के माध्यम से किया जाता है। सत्ता शक्ति का वह रूप है जिसे वैध होने के रूप में स्वीकार किया जाता है अर्थात जिसे सही और न्यायपूर्ण माना जाता है। यह संस्थागत है क्योंकि यह वैधता पर आधारित होती है। सामान्यत: लोग उनकी शक्ति को स्वीकार करते हैं जिनके पास सत्ता होती है क्योंकि वे उनके नियंत्रण को उचित और न्यायपूर्ण मानते हैं। अकसर कुछ विचारधाराएँ होती हैं जो वैधता की इस प्रक्रिया में सहायता करती हैं।

राज्यविहीन समाज

60 वर्षों से भी पूर्व सामाजिक मानवविज्ञानियों द्वारा किए गए राज्यविहीन समाजों के आनुभविक अध्ययन दर्शाते हैं कि बिना आधुनिक सरकारी तंत्र के व्यवस्था कैसे बनाए रखी जाती है। इसके बदले नातेदारी, विवाह और आवास पर आधारित गठबंधनों के द्वारा तथा धार्मिक कृत्यों और समारोहों में मित्रों और विरोधियों की भागीदारी से विभिन्न भागों में विपरीत संतुलन बन जाता था।

जैसाकि हम सब जानते हैं आधुनिक राज्य की एक निश्चित संरचना और औपचारिक कार्यविधियाँ हैं। फिर भी क्या राज्यविहीन समाजों की उपरोक्त वर्णित कुछ अनौपचारिक विशेषताएँ राज्य के समाजों में भी विद्यमान नहीं हैं?

राज्य की संकल्पना

राज्य वहाँ विद्यमान होता है जहाँ सरकार का एक राजनीतिक तंत्र (नागरिक सेवा कार्मिकों के साथ-साथ संसद या कांग्रेस जैसी संस्थाएँ) एक निश्चित क्षेत्र पर शासन करता है। सरकार की सत्ता एक वैध व्यवस्था से समर्थित होती है और जो अपनी नीतियों को लागू करने के लिए सैन्य शक्ति के उपयोग की क्षमता रखती है। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण राज्य को समाज के सभी अनुभागों के हितों के प्रतिनिधि के रूप में देखता है। संघर्षवादी दृष्टिकोण राज्य को समाज के प्रभावशाली अनुभागों के प्रतिनिधि के रूप में देखता है।

आधुनिक राज्य पारंपरिक राज्यों से बहुत भिन्न हैं। ये राज्य प्रभुसत्ता, नागरिकता और अकसर राष्ट्रवादी विचारों द्वारा परिभाषित हैं। प्रभुसत्ता का अभिप्राय एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र पर एक राज्य के अविवादित राजनीतिक शासन से है।

क्रियाकलाप-10

पता लगाएँ कि विभिन्न देशों में महिलाओं को मतदान का अधिकार कब मिला। आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि मतदान और सार्वजनिक पद पर खड़े होने का अधिकार प्राप्त होने के बावजूद महिलाओं का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है? क्या शक्ति अपने व्यापक अर्थ में संसद और अन्य संस्थाओं में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व को समझने के लिए एक उपयोगी संकल्पना होगी? क्या परिवारों और घरों में विद्यमान श्रम विभाजन महिलाओं की राजनीतिक जीवन में भागीदारी को प्रभावित करता है? ज्ञात करें कि संसद में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग क्यों की जा रही है।

आरंभ में प्रभुसत्तात्मक राज्यों में नागरिकता के साथ राजनीतिक भागीदारी के अधिकारों का पालन नहीं किया जाता था। इन्हें अधिकांशत: संघर्षों के द्वारा प्राप्त किया गया था जिसने राजतंत्र की शक्तियों को सीमित कर दिया अथवा उन्हें सक्रिय रूप से पदच्युत कर दिया। फ्रांस की क्रांति और हमारा भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष इस तरह के आंदोलनों के दो प्रमुख उदाहरण हैं।

नागरिकता के अधिकारों में नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार शामिल हैं। नागरिक अधिकारों में व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार रहने की जगह चुनने की, भाषण और धर्म की स्वतंत्रता, अपनी संपत्ति रखने का अधिकार तथा कानून के समक्ष समान न्याय का अधिकार शामिल हैं। राजनीतिक अधिकारों में चुनावों में भाग लेने और सार्वजनिक पद के लिए खड़े होने का अधिकार शामिल है। अधिकतर देशों में सरकारें सर्वव्यापक मतदान के सिद्धांत को स्वीकार करने से इंकार करती थीं। आरंभिक वर्षों में न केवल महिलाओं को अपितु पुरुषों की बड़ी जनसंख्या को भी मतदान से बाहर रखा जाता था क्योंकि एक निश्चित मात्रा में संपत्ति होना इसका मापदंड था। महिलाओं को बहुत समय तक इस अधिकार के लिए इंतज़ार करना पड़ा।

तीसरे प्रकार की नागरिकता के अधिकार सामाजिक अधिकार हैं। इनका सरोकार प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न्यूनतम स्तर तक आर्थिक कल्याण और सुरक्षा प्राप्त होने के विशेष अधिकार से है। इन अधिकारों में शमिल हैं स्वास्थ्य लाभ,

क्रियाकलाप-11

सामाजिक अधिकार लागू न करने वाले विभिन्न राज्यों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करें। पता करें कि इसके बारे में क्या सफ़ाई दी जाती है। चर्चा करें और देखें कि क्या आप आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों के बीच कोई संबंध देख पाते हैं।

क्रियाकलाप-12

ऐसी घटनाओं की सूचनाएँ एकत्रित करें जो सार्वभौमिक अंत:संबंधित विकास को दर्शाती हैं तथा साथ ही प्रजातीय, धार्मिक और राष्ट्रीय मतभेदों को प्रदर्शित करने वाली घटनाओं के बारे में भी सूचनाएँ एकत्रित करें। चर्चा करें कि राजनीति और अर्थशास्त्र उनमें क्या भूमिका निभा सकते हैं।

बेरोज़गारी भत्ता और न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने के अधिकार। सामाजिक या कल्याणकारी अधिकारों की व्यापकता ने कल्याणकारी राज्यों को जन्म दिया जो कि पश्चिमी समाजों में दूसरे विश्व युद्ध के समय से स्थापित किए गए थे। पूर्व समाजवादी देशों के राज्यों की इस क्षेत्र में काफ़ी अच्छी व्यवस्था थी। अधिकतर विकासशील देशों में वास्तव में यह विद्यमान नहीं था। आजकल पूरे विश्व में इन सामाजिक अधिकारों को राज्य का उत्तरदायित्व और आर्थिक विकास में रुकावट मानकर इन पर आक्रमण किया जा रहा है।

राष्ट्रवाद को प्रतीकों और विश्वासों के एक समुच्चय रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक राजनीतिक समुदाय का भाग होने का बोध कराता है। इस प्रकार व्यक्ति को 'ब्रिटिश', 'भारतीय', 'इंडोनेशियाई' या 'फ्रांसीसी' होने में गर्व और संबंधता की भावना का अनुभव होता है। संभवत: व्यक्तियों को हमेशा किसी न किसी प्रकार के सामाजिक समूहों जैसे अपने परिवार, गोत्र या धार्मिक समुदाय के साथ एक प्रकार की पहचान होने का भाव रहता है। तथापि राष्ट्रवाद आधुनिक राज्य के विकास के साथ ही प्रकट हुआ है। समकालीन विश्व सार्वभौमिक बाज़ार के तेज़ी से विस्तार और गहन राष्ट्रवादी भावनाओं और संघर्षों दोनों की वजह से जाना जाता है।

समाजशास्त्र की रुचि सिर्फ़ औपचारिक सरकारी तंत्र के अध्ययन में ही नहीं अपितु शक्ति के व्यापक अध्ययन में रही है। इसकी रुचि प्रजाति, भाषा और धर्म आधारित दलों, वर्गों, जातियों एवं समुदायों के बीच शक्ति वितरण में रही है। इसका ध्यान सिर्फ़ विशिष्ट राजनीतिक संघ जैसे राज्य विधानमंडलों, नगर परिषदों और राजनीतिक दलों पर ही नहीं अपितु अन्य संघों जैसे विद्यालयों, बैंकों और धार्मिक संस्थाओं पर भी है, जिनका प्राथमिक उद्देश्य राजनीतिक नहीं है। समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र काफ़ी व्यापक है। इसका क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों (जैसे महिला या पर्यावरण आंदोलन) से लेकर ग्रामीण दलों तक फैला हुआ है।

5

धर्म

धर्म काफ़ी लंबे समय से अध्ययन और चिंतन का विषय रहा है। अध्याय 1 में हमने देखा है कि कैसे समाज के बारे में सामाजिक निष्कर्ष धार्मिक चिंतनों से अलग हैं। धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन धर्म के धार्मिक या ईश्वरमीमांसीय अध्ययन से कई तरीके से अलग है। पहला, यह धर्म समाज में वास्तव में कैसे कार्य करता है और अन्य संस्थाओं के साथ इसका क्या संबंध है, के बारे में आनुभविक अध्ययन करता है। दूसरा, यह तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करता है। तीसरा, यह समाज और संस्कृति के अन्य पक्षों के संबंध में धार्मिक विश्वासों, व्यवहारों और संस्थाओं की जाँच करता है।

आनुभविक पद्धति का अर्थ है कि समाजशास्त्री धार्मिक प्रघटनाओं के लिए निर्णायक उपागम को नहीं अपनाता। तुलनात्मक पद्धति महत्त्वपूर्ण है

© NCERT not to be republished

क्योंकि यह एक अर्थ में सभी समाजों को एक दूसरे के समान स्तर पर रखती है। यह बिना किसी पूर्वाग्रह और भेदभाव के अध्ययन में सहायता करती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का अर्थ है कि धार्मिक जीवन को केवल घरेलू जीवन, आर्थिक जीवन और राजनीतिक जीवन के साथ संबद्ध करके ही बोधगम्य बनाया जा सकता है।

धर्म सभी ज्ञात समाजों में विद्यमान है हालाँकि धार्मिक विश्वास और व्यवहार एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में बदलते रहते हैं। सभी धर्मों की समान विशेषताएँ हैं–

- प्रतीकों का समुच्चय, श्रद्धा या सम्मान की भावनाएँ;
- अनुष्ठान या समारोह;
- विश्वासकर्ताओं का एक समुदाय।

धर्म के साथ संबद्ध अनुष्ठान विविध प्रकार के होते हैं। आनुष्ठानिक कार्यों में प्रार्थना करना, गुणगान करना, भजन गाना, विशेष प्रकार का भोजन करना (या ऐसा भोजन नहीं करना), कुछ दिनों का उपवास रखना और इसी प्रकार के अन्य कार्य शामिल होते हैं। चूँकि आनुष्ठानिक कार्य धार्मिक प्रतीकों से संबद्ध होते हैं अत: इन्हें प्राय: सामान्य जीवन की आदतों और क्रियाविधियों से एकदम भिन्न रूप में देखा जाता है। दैवीय सम्मान में मोमबत्ती या दीया जलाने का महत्त्व सामान्यतया कमरे में रोशनी करने से एकदम भिन्न होता है। धार्मिक अनुष्ठान प्राय: व्यक्तियों द्वारा अपने दैनिक जीवन में किए जाते हैं। लेकिन सभी धर्मों में विश्वासकर्ताओं द्वारा सामूहिक समारोह भी किए जाते हैं। सामान्यत: ये नियमित समारोह विशेष स्थानों–चर्चों, मस्जिदों, मंदिरों, तीर्थों में आयोजित किए जाते हैं।

धर्म एक पवित्र क्षेत्र है। इस बात पर विचार करें कि विभिन्न धर्मों के सदस्य पवित्र क्षेत्र में प्रवेश करने के पूर्व क्या करते हैं। उदाहरण के लिए, सिर को ढकते हैं, या नहीं ढकते, जूते उतारते हैं, या विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करते हैं, आदि। इन सबमें जो बात समान है वह है श्रद्धा की भावना, पवित्र स्थानों या स्थितियों की पहचान और उनके प्रति सम्मान की भावना।

एमिल दुर्खाइम का अनुसरण करने वाले धर्म के समाजशास्त्री उस पवित्र क्षेत्र को समझने में रुचि रखते हैं जिसे प्रत्येक समाज सांसारिक चीज़ों से भिन्न रखता है। अधिकतर मामलों में पवित्रता में अलौकिकता का तत्त्व होता है। अधिकांशत: किसी वृक्ष या मंदिर की पवित्रता के साथ यह विश्वास जुड़ा होता है कि इसके पीछे कोई अलौकिक शक्ति है, इसलिए यह पवित्र है। तथापि यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि कुछ धर्मों, जैसे आरंभिक बौद्ध धर्म और कन्फ्यूशियसवाद में अलौकिकता की कोई संकल्पना नहीं थी लेकिन जिन व्यक्तियों और चीज़ों को वे पवित्र मानते थे उनके लिए उनमें पर्याप्त श्रद्धा थी।

धर्म का समाजशास्त्रीय अध्ययन करते हुए चलिए हम प्रश्न पूछते हैं कि धर्म का अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ क्या संबंध है। धर्म का शक्ति और राजनीति के साथ बहुत निकट का संबंध रहा है। उदाहरण के लिए, इतिहास में समय-समय पर सामाजिक परिवर्तन के लिए धार्मिक आंदोलन हुए हैं, जैसे विभिन्न

जाति–विरोधी आंदोलन या लिंग आधारित भेदभाव के विरुद्ध आंदोलन। धर्म किसी व्यक्ति की निजी आस्था का मामला ही नहीं, अपितु इसका सार्वजनिक स्वरूप भी होता है। और धर्म का यही सार्वजनिक स्वरूप समाज की अन्य संस्थाओं के संबंध में महत्त्वपूर्ण होता है।

हमने देखा है कि समाजशास्त्र शक्ति को कैसे व्यापक संदर्भ मे देखता है। अतः राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र के बीच संबंध को जानना समाजशास्त्रीय हित में है। शास्त्रीय समाजशास्त्रियों का विश्वास था कि जैसे–जैसे समाज आधुनिक होता जाएगा धर्म का जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव कम होता जाएगा। धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना इस प्रक्रिया का वर्णन करती है। समकालीन घटनाएँ समाज के विभिन्न पक्षों में धर्म की दृढ़ भूमिका की जानकारी देती हैं। आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि ऐसा है?

मैक्स वैबर (1864–1920) के महत्त्वपूर्ण कार्य दर्शाते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक और आर्थिक व्यवहार के अन्य पक्षों के साथ धर्म के संबंधों को कैसे देखता है। वैबर का तर्क है कि कैल्विनवाद (प्रोटेस्टैंट ईसाई धर्म की एक शाखा) ने आर्थिक संगठन के साधन के रूप में पूँजीवाद के उद्‌भव और विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया था। कैल्विनवादियों का विश्वास था कि विश्व की रचना भगवान की महिमा के लिए हुई, इसका अभिप्राय है कि इस संसार में किया गया कोई भी कार्य उसके गौरव के लिए किया जाता है। यहाँ तक कि सांसारिक कार्यो को भी पूजनीय कार्य बना दिया गया। हालाँकि इस से भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कैल्विनवादी भाग्य की संकल्पना में भी विश्वास करते थे जिसका अर्थ है कि कौन स्वर्ग में जाएगा और कौन नर्क में, यह पहले से निश्चित था। चूँकि यह जानने का कोई तरीका नहीं था कि किसे स्वर्ग मिलेगा और किसे नर्क, लोग इस संसार में अपने कार्यों में भगवान की इच्छा के संकेत देखने लगे। इस प्रकार व्यक्ति चाहे जो भी व्यवसाय करता हो यदि वह अपने व्यवसाय में दृढ़ और सफल है तो उसे भगवान की प्रसन्नता का संकेत माना जाता था। अर्जित किया गया धन सांसारिक उपभोग में लगाने के लिए नहीं था अपितु कैल्विनवाद का सिद्धांत मितव्ययता से रहने का था। इसका अर्थ था कि निवेश को एक तरह का पवित्र सिद्धांत माना जाता था। पूँजीवाद के केंद्र में निवेश की संकल्पना है जिसमें पूँजी का निवेश अधिक वस्तुएँ बनाने के लिए किया जाता है जिससे अधिक लाभ होता है जिससे बदले में और अधिक पूँजी उत्पन्न होती है। इस प्रकार वैबर यह तर्क प्रस्तुत करने में सक्षम थे कि धर्म, इस मामले में कैल्विनवाद के आर्थिक विकास पर प्रभाव डालता है।

धर्म का अलग क्षेत्र के रूप में अध्ययन नहीं किया जा सकता। सामाजिक शक्तियाँ हमेशा और अनिवार्यतः धार्मिक संस्थाओं को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक बहस, आर्थिक स्थितियाँ और लिंग संबंधी मानक हमेशा धार्मिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसके विपरीत, धार्मिक मानक सामाजिक समझ को प्रभावित और कभी–कभी निर्धारित भी करते हैं। विश्व की आधी जनसंख्या महिलाओं की है। इसलिए समाजशास्त्रीय रूप से यह पूछना महत्त्वपूर्ण है कि मानव जनसंख्या के इतने बड़े हिस्से का

धर्म से क्या संबंध है। धर्म समाज का महत्त्वपूर्ण भाग है और अन्य भागों से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। समाजशास्त्रियों का कार्य इन विभिन्न अंतःसंबंधों को उजागर करना है। परंपरागत समाजों में, सामान्यतः धर्म सामाजिक जीवन में एक केंद्रीय हिस्से की भूमिका निभाता है। धार्मिक प्रतीक एवं अनुष्ठान अकसर समाज की भौतिक और कलात्मक संस्कृति से जुड़े होते हैं। समाजशास्त्र धर्म का अध्ययन किस तरह करता है यह जानने के लिए नीचे बॉक्स में दिए गए सारांश का अध्ययन करें।

6

शिक्षा

शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें सीखने की औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की संस्थाएँ शामिल हैं। हालाँकि यहाँ पर हम केवल विद्यालयी शिक्षा तक अपनी चर्चा को सीमित रखेंगे। हम सभी जानते हैं कि विद्यालय में प्रवेश लेना कितना महत्त्वपूर्ण है। हम यह भी जानते हैं कि हम में से बहुतों के लिए विद्यालय उच्च शिक्षा और अंत में रोज़गार प्राप्त करने की तरफ़ एक महत्त्वपूर्ण कदम है। हममें से कुछ के लिए यह कुछ आवश्यक सामाजिक दक्षताएँ प्राप्त करने का साधन हो सकती है। इन सभी मामलों में सामान्य बात है, शिक्षा की आवश्यकता का महसूस होना।

समाजशास्त्र इस आवश्यकता को समूह की विरासत के प्रेषण / संप्रेषण की प्रक्रिया के रूप में समझता है जो सभी समाजों में पाई जाती है। साधारण समाजों और जटिल आधुनिक समाजों में एक गुणात्मक अंतर है। साधारण समाजों में औपचारिक विद्यालय जाने की आवश्यकता नहीं थी। बच्चे बड़ों के साथ क्रियाकलापों में शामिल होकर प्रथाओं और जीवन के व्यापक तरीके सीख लेते थे। जटिल समाजों में हमने देखा कि श्रम का आर्थिक विभाजन बढ़ रहा है, घर से

> अनेक बाहरी तत्त्वों ने धार्मिक विशेषज्ञों के पारंपरिक जीवन को प्रभावित किया है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है नासिक में नए रोज़गारों और शैक्षणिक अवसरों की उत्पत्ति... स्वतंत्रता के बाद, पुरोहितों का जीवन बड़ी तेज़ी से परिवर्तित हो गया था। अब बेटे और बेटियों को विद्यालय भेजा जाता है और पारंपरिक कार्य से भिन्न कार्यों के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। अन्य तीर्थ स्थानों की तरह नासिक में भी धार्मिक क्रियाकलापों के लिए अन्य अतिरिक्त केंद्र उत्पन्न हो गए। किसी तीर्थयात्री के लिए ताम्र पात्र में गोदावरी का पवित्र जल घर ले जाना सामान्य क्रिया थी। ताम्रकारों ने ये पात्र प्रदान किए। तीर्थयात्री भी इन पात्रों को खरीदते थे जिन्हें घर ले जाकर अपने रिश्तेदारों और मित्रों में उपहार के रूप में बाँटते थे। काफ़ी समय तक नासिक को पीतल, ताम्र और चाँदी के दक्ष दस्तकारों के लिए जाना जाता था... चूँकि उनके पात्रों की माँग अनियमित और अनिश्चित होती थी अतः घर के सभी बड़े सदस्यों को इस कार्य में नहीं लगाया जा सकता था... अनेक दस्तकार छोटे और बड़े दोनों प्रकार के उद्योगों और व्यापारों में चले गए थे। (आचार्य 1974:399-401)

कार्यों का विभाजन हो रहा है, विशिष्ट शिक्षा और दक्षता प्राप्त करने की आवश्यकता है, राज्य व्यवस्थाओं, राष्ट्रों और प्रतीकों एवं विचारों के जटिल समुच्चय की भी उत्पत्ति हो रही है। ऐसी परिस्थिति में आप अनौपचारिक शिक्षा कैसे प्राप्त करेंगे? अभिभावक और अन्य बड़े लोग प्राप्त ज्ञान को अगली पीढ़ी तक अनौपचारिक रूप से कैसे संप्रेषित कर सकेंगे? ऐसी सामाजिक संदर्भ में शिक्षा का औपचारिक और सुनिश्चित होना आवश्यक है।

इससे भी आगे आधुनिक जटिल समाज सरल समाजों की तुलना में अमूर्त सार्वभौमिक मूल्यों पर निर्भर करते हैं। यही चीज़ इसे उस सरल समाज से अलग करती है जो परिवार, नातेदार, जनजाति, जाति या धर्म पर आधारित विशिष्ट मूल्यों पर आधारित है। आधुनिक समाजों में विद्यालयों की रचना एकरूपता, मानकीकृत प्रेरणाओं और सार्वभौमिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए की जाती है। इसे करने के अनेक तरीके हैं। उदाहरण के लिए, कोई 'विद्यालय के बच्चों की एक जैसी वर्दी' की बात कर सकता है। क्या आप मानकीकरण को बढ़ावा देने वाली अन्य विशेषताओं पर विचार कर सकते हैं?

एमिल दुर्खाइम के अनुसार, कोई भी समाज एक 'सामान्य आधार–कुछ विचारों, मनोभावों और व्यवहारों, के बगैर जीवित नहीं रह सकता, जिसे शिक्षा द्वारा सभी बच्चों को बिना भेदभाव के संप्रेषित किया जाना चाहिए, चाहे वे किसी भी सामाजिक श्रेणी के हों' (दुर्खाइम 1956 : 69)। शिक्षा बच्चे को विशिष्ट व्यवसाय के लिए तैयार करने वाली होनी चाहिए और साथ ही वह उसे समाज के मुख्य मूल्यों को समाहित करने में सक्षम बनाने वाली भी होनी चाहिए।

इस प्रकार प्रकार्यवादी समाजशास्त्री सामान्य सामाजिक आवश्यकताओं और सामाजिक मानकों के बारे में बात करते हैं। प्रकार्यवादियों के लिए, शिक्षा सामाजिक संरचना को बनाए रखती है और उसका नवीनीकरण करती है तथा संस्कृति का संप्रेषण और विकास करती है। शैक्षणिक व्यवस्था समाज में व्यक्तियों की अपनी भावी भूमिका के चयन और आवंटन के लिए एक

चित्रों की विवेचना करें

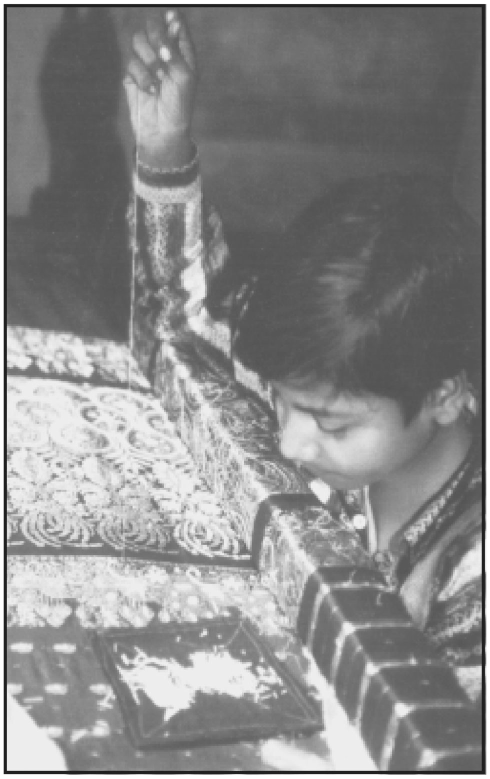

चित्र की विवेचना करें

महत्त्वपूर्ण क्रियाविधि है। इसे एक व्यक्ति को खुद को साबित करने का क्षेत्र भी माना जाता है और इसीलिए विभिन्न प्रस्थितियों के किए चयन का साधन भी, जो कि व्यक्तियों की अपनी क्षमताओं के अनुसार होता है। अध्याय 2 में भूमिकाओं और स्तरीकरण की प्रकार्यात्मक समझ पर हमारी चर्चा का पुनः स्मरण करें।

समाज को असमान रूप से विभेदकारी मानने वाले समाजशास्त्रियों के लिए शिक्षा स्तरीकरण के मुख्य अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करती है। और शिक्षा के असमान अवसर भी सामाजिक स्तरीकरण का ही परिणाम हैं। दूसरे शब्दों में हम अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में जाते हैं। चूँकि हम किसी एक प्रकार के विद्यालय में जाते हैं, हमें विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार और अंत में वैसे ही अवसर प्राप्त होते हैं।

उदाहरण के लिए, कुछ लोग तर्क देते हैं कि विद्यालयी शिक्षा 'संभ्रात और सामान्य के बीच विद्यमान भेद को और अधिक गहरा करती है।' विशेषाधिकार प्राप्त विद्यालयों में जाने वाले बच्चों में आत्मविश्वास आ जाता है जबकि इससे वंचित बच्चे इसके विपरीत भाव का अनुभव कर सकते हैं (पाठक 2002:151)। तथापि ऐसे और अनेक बच्चे हैं जो विद्यालय नहीं जा सकते या विद्यालय जाना बीच में ही छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए एक अध्ययन बताता है–

क्रियाकलाप-13

छोटे बच्चों के एक विद्यालय के अध्ययन से पता लगता है कि बच्चों ने सीखा है कि–

- 'कार्य संबंधित क्रियाकलाप खेल संबंधित क्रियाकलापों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।'
- 'कार्य संबंधित क्रियाकलापों में कोई भी या अध्यापक द्वारा निर्देशित सभी क्रियाकलाप होते हैं।'
- 'कार्य अनिवार्य है और खाली समय के क्रियाकलापों को खेल कहा जाता है' (ऐपल 1979:102)।

आप क्या सोचते हैं? चर्चा करें।

इस समय आप विद्यालय में कुछ बच्चे देख रहे हैं। यदि आप फसल के समय विद्यालय आएँ तो आपको अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का एक भी बच्चा नहीं मिलेगा। जब उनके अभिभावक बाहर कार्य करते हैं तो उन पर घर की कुछ ज़िम्मेदारियाँ आ जाती हैं और इन समुदायों की लड़कियाँ कभी-कभार ही विद्यालय जाती हैं क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के घरेलू और आमदनी वाले कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए 10 वर्ष की एक लड़की बेचने के लिए गाय का सूखा गोबर उठाती है (प्रतीची 2002 : 60)।

उपरोक्त रिपोर्ट दर्शाती है कि लिंग और जातिगत भेदभाव किस तरह शिक्षा के अवसरों का अतिक्रमण करते हैं। स्मरण करें कि हमने कैसे अध्याय 1 में इस पुस्तक को आरंभ किया था कि किसी बच्चे को अच्छी नौकरी मिलने के अवसर अनेक सामाजिक कारकों से प्रभावित होते हैं। सामाजिक संस्थाओं के कार्य करने के तरीके को समझने की आपकी समझ अब इस प्रक्रिया का सही विश्लेषण करने में आपकी सहायता करेगी।

शब्दावली

नागरिक—एक राजनीतिक समुदाय का सदस्य जिसकी सदस्यता के साथ अधिकार और कर्तव्य दोनों जुड़े होते हैं।

श्रम विभाजन—कार्य का विशिष्टीकरण जिसकी सहायता से विभिन्न प्रकार के कार्यों को एक उत्पादन प्रणाली में लगाया जाता है। सभी समाजों में श्रम विभाजन का कम से कम न्यूनतम आरंभिक स्वरूप होता ही है। तथापि औद्योगिक विकास के साथ पूर्व के उत्पादन प्रणाली की अपेक्षा श्रम विभाजन व्यापक रूप से जटिल हो गया है। आधुनिक विश्व में, श्रम विभाजन अंतरराष्ट्रीय विषय बन गया है।

लिंग—प्रत्येक लिंग के सदस्यों के व्यवहार के बारे में उपयुक्त समझी जाने वाली सामाजिक अपेक्षाएँ। लिंग को समाज के मूल संगठनात्मक सिद्धांत के रूप में देखा जाता है।

आनुभविक जाँच—समाजशास्त्रीय अध्ययन के किसी निश्चित क्षेत्र में की गई तथ्यात्मक जाँच।

अंतर्विवाह—जब विवाह किसी विशेष जाति, वर्ग या जनजातीय समूह में ही किया जाता है।

बहिर्विवाह—जब विवाह कुछ संबंधित समूहों से बाहर किया जाता है।

विचारधारा–ऐसे साझे विचार या आस्थाएँ जो प्रभावशाली समूहों के हितों को न्यायोचित सिद्ध करते हों। विचारधारा ऐसे सभी समाजों में पाई जाती है जिनमें समूहों के बीच व्यवस्थित और गहरे तक पैठी असमानताएँ पाई जाती हैं। विचारधारा की संकल्पना शक्ति की संकल्पना से घनिष्ठ रूप से संबंधित है, क्योंकि वैचारिक व्यवस्थाएँ, समूहों में पाई जाने वाली शक्ति के अंतर को वैध ठहराती हैं।

वैधता–विशेष प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के न्यायपूर्ण और वैधानिक होने की आस्था।

एकविवाह–जिस विवाह में केवल एक पत्नी और एक पति हो।

बहुविवाह–जिस विवाह में पुरुष की एक से अधिक पत्नी और महिला के एक से अधिक पति हों।

बहुपति-प्रथा–जिस विवाह में एक महिला के अनेक पति हों।

बहुपत्नी-प्रथा–जिस विवाह में एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ हों।

सेवा उद्योग–निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा सेवाओं की उत्पत्ति से संबंधित उद्योग जैसे पर्यटन उद्योग।

राज्य समाज–ऐसा समाज जिसमें औपचारिक सरकारी तंत्र हो।

राज्य विहीन समाज–ऐसा समाज जिसमें सरकार की औपचारिक संस्थाओं का अभाव हो।

सामाजिक गतिशीलता–एक प्रस्थिति या व्यवसाय से दूसरी प्रस्थिति या व्यवसाय में जाना।

प्रभुसत्ता–एक निश्चित क्षेत्र में राज्य का अविवादित राजनीतिक शासन।

अभ्यास

1. ज्ञात करें कि आपके समाज में विवाह के कौन से नियमों का पालन किया जाता है। कक्षा में अन्य विद्यार्थियों द्वारा किए गए प्रेक्षणों से अपने प्रेक्षण की तुलना करें तथा चर्चा करें।
2. ज्ञात करें कि व्यापक संदर्भ में आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन होने से परिवार में सदस्यता, आवासीय प्रतिमान और यहाँ तक कि पारस्परिक संपर्क का तरीका कैसे परिवर्तित होता है, उदाहरण के लिए प्रवास।
3. 'कार्य' पर एक निबंध लिखिए। कार्यों की विद्यमान श्रेणी और ये किस तरह बदलती हैं, दोनों पर ध्यान केंद्रित करें।
4. अपने समाज में विद्यमान विभिन्न प्रकार के अधिकारों पर चर्चा करें। वे आपके जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं?
5. समाजशास्त्र धर्म का अध्ययन कैसे करता है?

6. सामाजिक संस्था के रूप में विद्यालय पर एक निबंध लिखिए। अपनी पढ़ाई और वैयक्तिक प्रेक्षणों, दोनों का इसमें प्रयोग कीजिए।
7. चर्चा कीजिए कि सामाजिक संस्थाएँ परस्पर कैसे संपर्क करती हैं। आप विद्यालय के वरिष्ठ छात्र के रूप में स्वयं के बारे में चर्चा आरंभ कर सकते हैं। साथ ही विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा आपके व्यक्तित्व को किस प्रकार एक आकार दिया गया, इसके बारे में भी चर्चा करें। क्या आप इन सामाजिक संस्थाओं से पूरी तरह नियंत्रित हैं या आप इनका विरोध या इन्हें पुन:परिभाषित कर सकते हैं?

सहायक पुस्तकें

आचार्य, हेमलता. 1974. 'चेंजिंग रोल ऑफ रिलिजियस स्पेशलिस्ट इन नासिक–द पिलग्रिम सिटी', राव, एम.एस. (सं.). *एन अर्बन सोशियोलॉजी इन इंडिया : रीडर एंड सोर्स बुक.* ओरिएंट लोंगमैन, नयी दिल्ली, पृ. सं. 391–403.

एपल, माइकेल डब्ल्यू. 1979. *आइडियोलॉजी एंड करिकुलम.* रूटलेज़ एंड कीगन पॉल, लंदन।

चुगताई, इस्मत. 2004. *टिनीज ग्रेनी इन कटेंप्रेरी इंडियन शॉर्ट स्टोरीज़, सीरिज–1.* साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।

दुबे, लीला. 2001. *ऐंथ्रोपोलॉजिकल एक्सप्लोरेशंस इन जैंडर : इंटरसेक्टिंग फील्ड्स.* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली।

दुर्खाइम, एमिल. 1956. *एज्यूकेशन एंड सोशियोलॉजी.* द फ्री प्रेस, न्यूयार्क।

पाठक, अविजीत. 2002. *सोशल इप्लिकेशंस ऑफ़ स्कूलिंग : नॉलेज, पेडागागी एंड कांशेएसनेस.* रेनबो पब्लिशर्स, दिल्ली।

प्रतीची, 2002. द *प्रतीची एज्युकेशन रिपोर्ट.* प्रतीची ट्रस्ट, दिल्ली।

राय चौधरी, सुप्रिया. 2005. 'लेबर एक्टिविज़्म एंड वीमन इन द अनऑर्गेनाइज़्ड सेक्टर : गार्मेंट एक्सपोर्ट इंडस्ट्री इन बंगलौर', *इक्नोमिक एंड पोलिटिकल वीकली.* 28 मई–4 जून, पृ.सं. 2250–2255.

शाह, ए.एम. 1998. *फ़ेमिली इन इंडिया : क्रिटिकल एसेज़.* ओरिएंट लोंगमैन, हैदराबाद।

सिंह, योगेंद्र. 1993. *सोशल चेंज इन इंडिया : क्राइसेज़ एंड रेज़िलिएंस.* हर–आनंद पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली।

ओबरॉय, पेट्रिशिया. 2002. 'फ़ेमिली, किनशिप एंड मैरिज इन इंडिया', *स्टूडेंट्स ब्रिटानिका*–इंडिया. वोल्यूम–6, एंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, पृ सं. 145–155.

अध्याय 4

संस्कृति तथा समाजीकरण

I

परिचय

'समाज' की तरह 'संस्कृति' शब्द को भी बार-बार तथा कभी-कभी अस्पष्ट ढंग से प्रयोग किया जाता है। इस अध्याय में इसे स्पष्ट रूप से परिभाषित करने तथा इसके विभिन्न पक्षों की सराहना करने का प्रयास किया गया है। रोज़मर्रा की बातों में संस्कृति कला तक सीमित है अथवा कुछ वर्गों या यहाँ तक कि देशों की जीवन शैली का संकेत करती है। समाजशास्त्रीय एवं मानवविज्ञानी उन सामाजिक संदर्भों का अध्ययन करते हैं जिनमें संस्कृति विद्यमान है। वे संस्कृति को अलग से लेकर इसके विभिन्न पक्षों के बीच संबंधों को जानने का प्रयास करते हैं।

जिस प्रकार से आपको अनजानी जगह या प्रदेश का पता लगाने के लिए एक मानचित्र की आवश्यकता होती है, उसी तरह से समाज में व्यवहार करने के लिए आपको संस्कृति की आवश्यकता होती है। संस्कृति एक सामान्य समझ है जिसको समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक अंत:क्रिया के माध्यम से सीखा तथा विकसित किया जाता है। किसी भी समूह की आपसी सामान्य समझ इसे अन्य से अलग करती है तथा इसे एक पहचान प्रदान करती है। लेकिन संस्कृति कभी भी परिष्कृत उत्पाद नहीं

क्रियाकलाप-1

आप किसी अन्य व्यक्ति का अपनी 'संस्कृति' में कैसे अभिवादन करेंगे? क्या आप विभिन्न व्यक्तियों (मित्रों, बुजुर्ग संबंधियों, विपरीत लिंगी, अन्य समूहों के व्यक्तियों)का विभिन्न प्रकार से अभिवादन करेंगे? अपने किसी अटपटे अनुभव की चर्चा कीजिए, जब आप नहीं जानते थे कि किसी व्यक्ति का अभिवादन किस प्रकार किया जाए। क्या यह इसलिए हुआ क्योंकि आप साझी 'संस्कृति' को नहीं बाँटते थे? परंतु अगली बार आपको पता होगा कि आपको क्या करना है। इस तरह आपका संस्कृति संबंधी ज्ञान बढ़ता है तथा स्वयं पुन: व्यवस्थित होता है।

होती। ये सदा परिवर्तनशील तथा विकसित होती रहती है। इसके तत्त्व लगातार जुड़ते, घटते, विस्तारित, संकुचित तथा पुनःव्यवस्थित होते रहते हैं। इसके फलस्वरूप संस्कृतियाँ प्रकार्यात्मक इकाई के रूप में गतिशील रहती हैं।

व्यक्तियों की अन्य व्यक्तियों के साथ सामान्य समझ विकसित करने तथा विभिन्न चिह्नों तथा संकेतों से वही अर्थ ग्रहण करने की क्षमता ही मानव को अन्य प्राणियों से अलग करती है। अर्थ का सृजन सामाजिक सद्‌गुण है जिसे हम परिवारों, समूहों तथा समुदायों में अन्य व्यक्तियों के साथ रहकर सीखते हैं। हम परिवार के सदस्यों, मित्रों तथा साथियों के साथ विभिन्न सामाजिक परिवेशों में अंतःक्रिया द्वारा विभिन्न साधनों तथा तकनीकों के साथ-साथ अभौतिक चिह्नों तथा संकेतों का प्रयोग करना सीखते हैं। इसमें से अधिकांश ज्ञान की जानकारी हमें व्यवस्थित ढंग से मौखिक रूप से या किताबों के माध्यम से प्राप्त होती है।

उदाहरण के लिए नीचे दी गई अंतःक्रिया पर ध्यान दें। ध्यान दें कि कैसे शब्द तथा चेहरे के हाव-भाव बातचीत में अर्थ संप्रेषित करते हैं।

इस सीखने की प्रक्रिया से हमें समाज में अपनी भूमिका तथा उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सहायता मिलती है। आप पहले ही प्रस्थिति एवं भूमिकाओं के बारे में जान चुके हैं। परिवार में हम प्रारंभिक समाजीकरण को सीखते हैं। जबकि स्कूल तथा अन्य संस्थाओं में द्वितीयक समाजीकरण होता है। इस बारे में हम इस अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

2

विविध परिवेश, विभिन्न संस्कृतियाँ

मनुष्य विभिन्न प्राकृतिक परिवेशों जैसे पहाड़ों तथा मैदानों, जंगलों तथा स्वच्छ स्थलों, रेगिस्तानों तथा नदी घाटियों, द्वीपों तथा मुख्य भूमि में रहते हैं। वह विभिन्न सामाजिक स्थानों जैसे कि गाँवों, कस्बों तथा शहरों में भी रहते हैं। विभिन्न वातावरणों में, प्राकृतिक तथा सामाजिक स्थितियों का सामना करने के लिए, व्यक्ति विभिन्न नीतियाँ अपनाते हैं। इससे जीवन जीने के विभिन्न तरीकों या संस्कृतियों का विकास होता है।

यात्री ने आटोचालक से पूछा : "इंदिरानगर"? यहाँ वह क्रिया जिससे प्रश्न का अर्थ संप्रेषित होता है वह आँखो के संकेत में निहित है-'बारथीरा'? या "क्या आप चलेंगे?"- यदि प्रश्न का उत्तर 'हाँ' हुआ तो चालक अपना सिर पिछली सीट की ओर हिला देगा। यदि उत्तर 'ना' हुआ (जैसा कि अकसर होता है और प्रत्येक बैंगलोरवासी जानता है) तो वह चला जाएगा या वह मुँह बनाएगा जैसेकि उसने कोई गलत शब्द सुन लिया हो या मुसकराहट के साथ सिर हिलाएगा जैसेकि वह 'खेद' व्यक्त कर रहा हो, यह उस क्षण की स्थिति के अनुसार होगा।

चर्चा कीजिए कि प्राकृतिक परिवेश संस्कृति को कैसे प्रभावित करता है

भारत में तमिलनाडु तथा केरल के समुद्री किनारे के साथ-साथ अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह के कुछ भागों को प्रभावित करने वाले 26 दिसंबर, 2004 को आए सुनामी के विध्वंस के दौरान अपनाई गई सुरक्षा की तकनीकों में विषमताएँ इसका प्रमाण थीं। मुख्य भूमि तथा द्वीपों के लोग अपेक्षाकृत आधुनिक जीवन शैली अपना रहे हैं। इन द्वीपों के मछुआरे तथा सेवा कार्मिक सचेत नहीं थे तथा इन्होंने अत्यधिक विध्वंस को सहन किया है और इसमें अनेक लोगों ने जानें गवाईं। दूसरी ओर द्वीपों में रहने वाली 'आदिम' जनजातियों ने जैसेकि ओंगें, जारवा, ग्रेट अंडमानी या शोंपन जिनकी आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक तक पहुँच नहीं है, अपनी अनुभवी जानकारी के आधार पर आपदा का पूर्वानुमान लगा लिया तथा ऊँचाई वाले स्थानों पर जाकर अपना बचाव कर लिया। इससे पता चलता है कि आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक तक पहुँच होने से आधुनिक संस्कृति द्वीपों में रहने वाली जनजातियों की संस्कृति से बेहतर नहीं हो जाती। अतः संस्कृतियों को श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता परंतु प्रकृति द्वारा आरोपित दबावों का सामना करने की इनकी पर्याप्त या अपर्याप्त योग्यता के आधार पर इन्हें जाँचा ज़रूर जा सकता है।

क्रियाकलाप-2

अपने क्षेत्र के अतिरिक्त कम-से-कम किसी एक क्षेत्र के बारे में पता लगाएँ कि प्राकृतिक वातावरण खाने-पीने की आदतों, निवास के प्रतिमान, कपड़ों तथा देवी-देवताओं की पूजा करने के तरीकों को कैसे प्रभावित करता है?

संस्कृति की परिभाषा

सामान्यतया 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग शास्त्रीय संगीत, नृत्य तथा चित्रकला में परिष्कृत रुचि का ज्ञान प्राप्त करने के संदर्भ में किया जाता है। यह परिष्कृत रुचि लोगों को 'असांस्कृतिक' आम व्यक्तियों से अलग करने के लिए रखी गई थी। जैसाकि आजकल हम देखते हैं कि हम स्वयं चाय के स्थान पर कॉफी को प्राथमिकता देते हैं।

क्रियाकलाप-3

भारतीय भाषाओं में संस्कृति शब्द के समतुल्य शब्दों की पहचान कीजिए। वे किस प्रकार से संबंधित हैं?

इसके विपरीत समाजशास्त्री संस्कृति को व्यक्तियों में विभेद करने वाला साधन नहीं मानते, परंतु जीवन जीने का एक तरीका मानते हैं जिसमें समाज के सभी सदस्य भाग लेते हैं। प्रत्येक सामाजिक संस्था अपनी स्वयं की संस्कृति का विकास करती है। अंग्रेज़ विद्वान एडवर्ड टायलर संस्कृति की एक पूर्व मानवविज्ञानीय परिभाषा देते हैं: 'संस्कृति या सभ्यता अपने व्यापक नृजातीय अर्थ में एक जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, आस्था, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा तथा मनुष्य के समाज के सदस्य के रूप में होने के फलस्वरूप प्राप्त अन्य क्षमताएँ तथा आदतें शामिल हैं' (टायलर 1871:1)।

चर्चा कीजिए कि यह चित्र किस तरह की जीवन शैली को दर्शाता है

मानवविज्ञान के 'प्रकार्यात्मक स्कूल' के संस्थापक पोलैंड के ब्रोनिसला मैलिनोवस्की (1884–1942) ने दो पीढ़ियों के बाद लिखा– 'संस्कृति में उत्तराधिकार में प्राप्त कलाकृतियाँ, वस्तुएँ, तकनीकी प्रक्रिया, विचार, आदतें तथा मूल्य शामिल हैं' (मैलिनोवस्की 1931:621–46)।

क्लिफोर्ड ग्रीट्ज़ ने सुझाव दिया था कि हम मानवीय क्रियाओं को पुस्तक में दिए गए शब्दों की तरह देखते हैं तथा उन्हें संदेश का संप्रेषण करते हुए देखते है। '...मानव एक प्राणी है जो अपने स्वयं के बुने हुए महत्त्वाकांक्षाओं के जाल में फँसा हुआ है। मैं संस्कृति को यही जाल मानता हूँ...'। हमारी खोज किसी आकस्मिक व्याख्या के लिए नहीं है, परंतु एक ऐसी व्याख्यात्मक परिभाषा के लिए है, जिसका अर्थ निकलता है (ग्रीट्ज़ 1973:5)। इसी तरह लेसली व्हाइट ने संस्कृति को वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं को अर्थ देने वाले साधन के रूप में तुलनात्मक महत्त्व दिया है। इसके लिए उन्होंने किसी स्रोत विशेष के पानी को लोगों द्वारा पवित्र माने जाने का उदाहरण दिया है।

- क्या आपने मैलिनोवस्की की परिभाषा में कोई ऐसी चीज़ देखी हैं जो टायलर की परिभाषा में नहीं है?

कला के अतिरिक्त टायलर द्वारा सूचीबद्ध की गई सभी वस्तुएँ अभौतिक हैं। इसका कारण यह नहीं है कि टायलर ने स्वयं कभी भी भौतिक संस्कृति पर ध्यान नहीं दिया। वास्तव में वह संग्रहालय के अध्यक्ष थे तथा मानवविज्ञान पर उनके अधिकांश लेख विश्व के विभिन्न समाजों की कलाकृतियों तथा औज़ारों की जाँच पड़ताल पर आधारित हैं जहाँ की उन्होंने कभी कोई यात्रा नहीं की थी। अब हम संस्कृति के बारे में उनकी परिभाषा को इसके अतिसूक्ष्म तथा अमूर्त आयामों पर आधारित एक प्रयास के रूप में देख सकते हैं ताकि उनके अध्ययन में शामिल समाजों के बारे में व्यापक समझ प्राप्त की जा सकें। मैलिनोवस्की प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पश्चिमी प्रशांत महासागर के एक द्वीप पर फँस गए थे तब उन्होंनें इस बात की खोज की कि जिस समाज का आप अध्ययन कर रहे हैं, वहाँ लंबी अवधि तक रहना कितना महत्त्वपूर्ण है। इसने आगे चलकर 'क्षेत्रीय कार्य' की परंपरा की स्थापना की जिसके बारे में आप अध्याय 5 में पढ़ेंगे।

मानवविज्ञानीय अध्ययनों में संस्कृति की बहुल परिभाषाओं ने अल्फ्रेड क्रोबर तथा क्लाएड क्लूखोन (संयुक्त राज्य के मानवविज्ञानी) को 1952 में एक व्यापक सर्वेक्षण *कल्चर : ए क्रिटिकल रिव्यू ऑफ़ कांसेप्ट्स एंड डेफ़ीनिशंस*

© N ned

संस्कृति...

(क)	सोचने, अनुभव करने तथा विश्वास करने का एक तरीका है।
(ख)	लोगों के जीने का एक संपूर्ण तरीका है।
(ग)	व्यवहार का सारांश है।
(घ)	सीखा हुआ व्यवहार है।
(ड.)	सीखी हुई चीज़ों का एक भंडार है।
(च)	समाजिक धरोहर है जोकि व्यक्ति अपने समूह से प्राप्त करता है।
(छ)	बार-बार घट रही समस्याओं के लिए मानकीकृत दिशाओं का एक समुच्चय है।
(ज)	व्यवहार के मानकीय नियमितीकरण हेतु एक साधन है।

क्रियाकलाप-4

इन परिभाषाओं की तुलना करें ताकि आप इनमें से (या इनके एक मिश्रण) सबसे संतोषजनक परिभाषा का पता लगा सकें। ऐसा करने के लिए आप 'संस्कृति' शब्द के परिचित प्रयोगों की सूची (अट्ठारहवीं शताब्दी में लखनऊ की संस्कृति, अतिथि सत्कार की संस्कृति या सामान्यता प्रयुक्त शब्द 'पाश्चात्य संस्कृति') बना सकते हैं। इन परिभाषाओं में से कौन सी परिभाषाएँ इन प्रत्येक परिचित प्रयोगों के अर्थ को सबसे अच्छी तरह संप्रेषित करती हैं।

के प्रकाशन में मदद की। सर्वेक्षण में दी गई विभिन्न परिभाषाओं के कुछ प्रतिदर्श ऊपर दिए जा रहे हैं–

- इन परिभाषाओं की तुलना यह देखने के लिए करें कि इनमें से कौन-सी परिभाषा या परिभाषाओं का समुच्चय आपको सबसे ज़्यादा संतोषजनक लगता है।

आप शायद सबसे पहले बार-बार प्रयुक्त शब्द–'तरीका', 'सीखना' तथा 'व्यवहार' को पाएँगे। हालाँकि यदि आप यहाँ ध्यान से देखेंगे कि प्रत्येक शब्द का प्रयोग कैसे किया है, तो अर्थों के बदलाव को पाएँगे। पहली परिभाषा मानसिक तरीकों की बात करती है जबकि दूसरी जीवन के संपूर्ण तरीके की बात करती है। (घ), (ड.) तथा (च) परिभाषाओं में संस्कृति के उस पक्ष पर बल दिया गया है, जो समूहों में तथा पीढ़ियों में आपस में बाँटी जाती है तथा हस्तांतरित होती रहती है। अंतिम दो परिभाषाओं में पहली बार संस्कृति को व्यवहार निर्देशित करने के साधन के रूप में दर्शाया गया है।

'संस्कृति' शब्द वाले उन वाक्यों की सूची बनाएँ जो आपने सुने हों। अपने मित्रों तथा परिवार से संस्कृति का अर्थ पूछिए। संस्कृतियों के बीच अंतर के लिए उनके मानदंड क्या है?

संस्कृति के आयाम

संस्कृति के तीन आयाम प्रचलित है–

(1) **संज्ञानात्मक**–इसका संदर्भ हमारे द्वारा देखे या सुने गए को, व्यवहार में लाकर उसे

अर्थ प्रदान करने की प्रक्रिया के सीखने से है। (अपने मोबाइल फोन की घंटी को पहचानना, किसी नेता के कार्टून की पहचान करना)।

(2) **मानकीय**—इसका संबंध आचरण के नियमों से है (अन्य व्यक्तियों के पत्रों को न खोलना, निधन पर अनुष्ठानों का निष्पादन)।

(3) **भौतिक**—इसमें भौतिक साधनों के प्रयोग से संभव कोई भी क्रियाकलाप शामिल है। भौतिक पदार्थों में उपकरण या यंत्र भी शामिल हैं। उदाहरणार्थ; इसमें इंटरनेट 'चैटिंग', ज़मीन पर 'कोलम' बनाने के लिए चावल के आटे का उपयोग शामिल है।

आपको ऐसा लग सकता है कि भौतिक संस्कृति, विशेष रूप में कला के बारे में हमारी समझ, संज्ञानात्मक तथा मानकीय क्षेत्रों में जानकारी प्राप्त किए बिना अधूरी है। यह सही है कि सामाजिक प्रक्रिया के बारे में हमारी विकासशील समझ इन सभी क्षेत्रों की जानकारी से बनेगी। परंतु हम पाएँगे कि एक समुदाय में जहाँ कुछ लोगों को साक्षरता की संज्ञानात्मक निपुणता प्राप्त है, वहाँ वास्तव में निजी पत्र अन्य व्यक्तियों द्वारा पढ़ा जाना एक नियम-सा बन गया है। परंतु जैसाकि हम नीचे पाएँगे, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र पर अलग अध्ययन महत्त्वपूर्ण अंतरदृष्टियाँ उपलब्ध कराता है।

संस्कृति के संज्ञानात्मक पक्ष

किसी भी व्यक्ति द्वारा अपनी संस्कृति के संज्ञानात्मक पक्ष की पहचान इसी संस्कृति के भौतिक पक्ष (जोकि वास्तविक या दिखाई देने वाले या सुनाई देने वाले हैं) तथा इसके मानकीय पक्ष (जोकि सुस्पष्ट दिए गए हैं) की पहचान करने की तुलना में कठिन होता है। संज्ञान का संबंध समझ से है, अपने वातावरण से प्राप्त होने वाली समस्त सूचना का हम कैसे उपयोग करते हैं। साक्षर समाजों में विचार किताबों तथा दस्तावेज़ों में दिए होते हैं जो पुस्तकालयों, संस्थाओं या संग्रहालयों में सुरक्षित रखी जाती हैं। परंतु निरक्षर समाजों में दंतकथाएँ या जनश्रुतियाँ याद्दाश्त में रहती हैं तथा मौखिक रूप में हस्तांतरित की जाती हैं। वहाँ मौखिक परंपरा के विशेषज्ञ होते हैं जिन्हें अनुष्ठानों या उत्सवों के अवसर पर यह सब सुनाने तथा याद रखने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

आइए, विचार करें कि लेखन कैसे कला के उत्पादन तथा उपभोग को प्रभावित कर सकता है। वाल्टर ओंग ने अपनी प्रभावी पुस्तक *ओरेलिटी एंड लिटरेसी* में 1971 में हुए एक अध्ययन के बारे में बताया है जो यह बताता है कि लगभग 3000 विद्यमान भाषाओं में केवल 78 में साहित्य उपलब्ध है। ओंग सुझाव देते हैं कि अलिखित सामग्री की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं। इसे याद रखने हेतु आसान बनाने के लिए इसमें शब्दों को बार-बार दोहराया जाता है। किसी भी अनजानी संस्कृति के लिखित विवरण के पाठकों की तुलना में मौखिक क्रिया को श्रोता आसानी से ग्रहण करता तथा समझता है। मूलपाठ को जब लिखा जाता है तो वह विस्तारित हो जाती है।

ऐतिहासिक तौर पर हमारे जैसे समाजों में साक्षरता केवल अधिक सुविधा प्राप्त व्यक्तियों

को ही उपलब्ध हुई है। समाजशास्त्रीय अध्ययनों का प्रायः इस बात की खोज से सरोकार रहा है कि जिन परिवारों में कोई भी व्यक्ति कभी स्कूल नहीं गया हो, उनके जीवन के लिए साक्षरता को कैसे प्रासंगिक बनाया जाए। इससे अप्रत्याशित उत्तर भी प्राप्त हो सकते हैं जैसेकि, एक सब्ज़ी विक्रेता पूछता है कि उसको वर्ण अक्षर जानने की क्या आवश्यकता है जबकि वह दिमाग से गणना कर सकता है कि उसके ग्राहक को उसे क्या देना है?

समकालीन विश्व हमें अत्यधिक रूप से लिखित श्रव्य एवं दृश्य रिकार्ड पर विश्वास करने की छूट देता है, तथापि भारतीय शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थियों को अभी भी उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान को याद रखने के लिए कहा जाता है और इसे लिखने के लिए हतोत्साहित किया जाता है। हमें अभी भी इलैक्ट्रॉनिक साधनों, बहुविध माध्यमों, मोबाइल तथा इंटरनेट के प्रभावों की पूरी जानकारी नहीं है। क्या आप सोचते हैं कि ये नयी प्रणालियाँ हमारी एकाग्रता की अवधि तथा संज्ञानात्मक संस्कृति पर प्रभाव डालती हैं?

संस्कृति के मानकीय पक्ष

मानकीय पक्ष में लोकरीतियाँ, लोकाचार, प्रथाएँ, परिपाटियाँ तथा कानून शामिल हैं। यह मूल्य या नियम ही हैं जो विभिन्न संदर्भों में समाजिक व्यवहार को दिशा-निर्देश देते हैं। समाजीकरण के परिणामस्वरूप हम प्रायः सामाजिक मानकों का अनुसरण करते हैं क्योंकि हम वैसा करने के आदी होते हैं। सभी सामाजिक मानकों के साथ स्वीकृतियाँ होती हैं जो कि अनुरूपता को बढ़ावा देती हैं। सामाजिक नियंत्रण के बारे में हम पहले ही अध्याय 2 में चर्चा कर चुके हैं।

मानदंड अस्पष्ट नियम हैं जबकि कानून स्पष्ट नियम हैं। फ्रैंच समाजशास्त्री पियरे बोरद्यू ने हमें याद दिलाया है कि जब हम किसी अन्य संस्कृति के मानकों को जानने का प्रयास करते हैं तो हमें याद रखना चाहिए कि उनमें कुछ अस्पष्ट आपसी समझ होती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति उसे दी गई किसी चीज़ के लिए आभार व्यक्त करना चाहता है तो उसे उसी तत्परता से वापसी उपहार नहीं देना चाहिए अन्यथा ऐसा दिखाई देगा कि वह मित्रवत व्यवहार के स्थान पर अपना ऋण अदा कर रहा है।

कानून सरकार द्वारा नियम या सिद्धांत के रूप में परिभाषित औपचारिक स्वीकृति है जिसका पालन नागरिकों को अवश्य करना चाहिए। कानून स्पष्ट होते हैं। ये पूरे समाज पर लागू होते हैं तथा कानूनों का उल्लंघन करने पर जुर्माना तथा सज़ा हो सकती है। यदि आपके घर में बच्चों को सूर्यास्त के बाद घर से बाहर रहने की अनुमति नहीं है तो यह एक मानक है। यह केवल आपके परिवार के लिए है तथा सभी परिवारों पर लागू नहीं हो सकता। हालाँकि यदि आपको किसी दूसरे के घर से सोने की चेन चुराते हुए पकड़ा जाए तो आपने सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत निजी संपति के कानून का उल्लंघन किया है तथा इसके लिए आपको जाँच के बाद सज़ा के रूप में जेल भेजा जा सकता है।

कानून, जो राज्य की सत्ता से बनते हैं, वे स्वीकार्य व्यवहार की सबसे अधिक औपचारिक परिभाषा हैं। जहाँ विभिन्न स्कूल विद्यार्थियों के लिए विभिन्न मानक बनाते हैं, वही कानून उन सभी पर लागू होता है जो राज्य की सत्ता को स्वीकार करते हैं। कानून के विपरीत मानक प्रस्थिति अनुसार बदल सकते हैं। समाज के प्रभुत्वशाली हिस्से प्रभुता वाले मानक लागू करते हैं। अक्सर ये मानक भेदभावपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए, ऐसे मानक जो दलितों को समान कुएँ या यहाँ तक कि पानी के समान स्रोत से पानी पीने की या औरतों को सार्वजनिक स्थानों पर स्वतंत्रतापूर्वक घूमने की अनुमति नहीं देते।

संस्कृति के भौतिक पक्ष

भौतिक पक्ष औज़ारों, तकनीकों, यंत्रों, भवनों तथा यातायात के साधनों के साथ-साथ उत्पादन तथा संप्रेषण के उपकरणों से संदर्भित है। नगरीय क्षेत्रों में चालित फ़ोन, वादक यंत्रों, कारों तथा बसों, ए.टी.एम. (स्वतः गणक मशीनों), रेफ्रिजरेटरों तथा संगणकों का दैनिक जीवन में व्यापक प्रयोग तकनीक पर निर्भरता को दर्शाता है। यहाँ तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में ट्रांज़िस्टर रेडियो का प्रयोग या उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई के लिए ज़मीन के नीचे से पानी ऊपर उठाने के लिए इलैक्ट्रिक मोटर पंपों का प्रयोग तकनीकी उपकरणों को अपनाए जाने को दर्शाता है।

सारांश में संस्कृति के दो सैद्धांतिक आयाम हैं—भौतिक तथा अभौतिक। जहाँ संज्ञानात्मक तथा मानकीय पक्ष अभौतिक हैं, वहीं भौतिक आयाम उत्पादन बढ़ाने तथा जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृति के एकीकृत कार्यों हेतु भौतिक तथा अभौतिक आयामों को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। परंतु जब भौतिक या तकनीकी आयाम तेज़ी से बदलते हैं तो मूल्यों तथा मानकों की दृष्टि से अभौतिक पक्ष पिछड़ सकते हैं। इससे संस्कृति के पिछड़ने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जब अभौतिक आयाम तकनीकी विकास के साथ तालमेल बैठाने में असक्षम हों।

संस्कृति तथा पहचान

पहचान विरासत में नहीं मिलती अपितु यह व्यक्ति तथा समाज को इनके दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंधों से प्राप्त होती है। व्यक्ति को उसके द्वारा अदा की गई सामाजिक भूमिका ही पहचान प्रदान करती है। आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति बहुविध भूमिकाएँ अदा करता है। उदाहरणार्थ; परिवार में व्यक्ति माता-पिता या एक बच्चा हो सकता है परंतु प्रत्येक विशेष भूमिका के लिए निश्चित उत्तरदायित्व तथा शक्तियाँ होती हैं।

भूमिकाओं को प्रभावी बनाना पर्याप्त नहीं होता। इन्हें पहचान तथा मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। ऐसा प्रायः भूमिका अदा करने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को मान्यता देकर किया जा सकता है। स्कूलों में विद्यार्थियों के पास अपने अध्यापकों, अन्य विद्यार्थियों तथा कक्षा में प्रदर्शनों का उल्लेख करने का अपना तरीका होता है। इस भाषा के सृजन द्वारा जिसमें कुछ कूट अर्थ भी होते हैं, वे अर्थों और उनके महत्त्व का अपना संसार बनाते हैं।

स्त्रियाँ भी अपनी भाषा बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं जिसके द्वारा वे अपना निजी समय प्राप्त कर लेती है, जोकि पुरुषों के नियंत्रण से बाहर होता है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में तालाब में स्नान करते समय तथा नगरीय क्षेत्रों में छतों पर कपड़े सुखाते समय एकत्रित होकर।

किसी भी संस्कृति की अनेक उपसंस्कृतियाँ हो सकती हैं जैसेकि संभ्रात तथा कामगार वर्ग के युवा। उपसंस्कृतियों की पहचान शैली, रुचि तथा संघ से होती है। किसी विशेष उपसंस्कृति की पहचान उनकी भाषा, कपड़ों, संगीत के विशेष प्रकार के प्रति प्राथमिकता या उनके समूह के अन्य सदस्यों के साथ उनकी अंत:क्रियाओं के प्रकार से की जा सकती है।

उपसंस्कृति समूह एक संबद्ध इकाई के रूप में भी कार्य कर सकता है जो समूह के सदस्यों को पहचान देता है। ऐसे समूहों में नेता तथा अनुयायी हो सकते हैं, परंतु समूह के सदस्य समूह के उद्देश्यों से वचनबद्ध होते हैं तथा इकट्ठे होकर इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, आस-पड़ोस के युवा सदस्य क्लब बना सकते हैं ताकि अपने आपको खेलों तथा अन्य संरचनात्मक कार्यों में व्यस्त रखा जा सके। ऐसे कार्यों से सदस्यों की समाज में सकारात्मक छवि बनती है। इससे सदस्यों को अपनी छवि सकारात्मक बनाने में ही सहायता नहीं मिलती अपितु इससे अपने कार्यों को और बेहतर ढंग से करने की प्रेरणा भी मिलती है। समूह के रूप में उनकी पहचान में रूपांतरण होता है। समूह अपने को अन्य समूहों से अलग करने में सक्षम है और इस तरह आस-पड़ोस में स्वीकृति तथा मान्यता द्वारा अपनी पहचान बनाता है।

क्रियाकलाप-5

क्या आपको अपने आस-पास में बने किसी उप-सांस्कृतिक समूह की जानकारी है? आप इनको पहचानने में कैसे सफल हुए?

नृजातिकेंद्रवाद

जब संस्कृतियाँ एक दूसरे के संपर्क में आती है, तभी नृजातिकेंद्रवाद की उत्पत्ति होती है। नृजातिकेंद्रवाद से आशय अपने सांस्कृतिक मूल्यों का अन्य संस्कृतियों के लोगों के व्यवहार तथा आस्थाओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग करने से है। इसका अर्थ है कि जिन सांस्कृतिक मूल्यों को मानदंड या मानक के रूप में प्रदर्शित किया गया था उन्हें अन्य संस्कृतियों की आस्थाओं तथा मूल्यों से श्रेष्ठ माना जाता है। हम अध्याय 1 तथा अध्याय 3 (विशेष रूप से धर्म पर हुई चर्चा में) में देख चुके हैं कि समाजशास्त्र किस प्रकार से एक आनुभविक शास्त्र है न कि मानकीय।

नृजातिकेंद्रवाद की तुलनाओं में निहित सांस्कृतिक श्रेष्ठता की भावना उपनिवेशवाद की स्थितियों में स्पष्ट दिखाई देती है। थॉमस बाबींगटोन मैकॉले के भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी को भेजे गए शिक्षा (1835) के प्रसिद्ध विवरण में नृजातीयता का उदाहरण दिया गया है जब वे कहते हैं, 'हमें इस समय एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने का भरसक प्रयास करना चाहिए जो हमारे तथा हमारे द्वारा शासित लाखों लोगों के बीच द्विभाषियों का कार्य करे, व्यक्तियों का ऐसा वर्ग

जो खून तथा रंग में भारतीय हो परंतु रुचि में, विचार में, नैतिकता तथा प्रतिभा में अंग्रेज़ हो' (मुखर्जी 1948/1979 :87 में उद्धृत)।

नृजातिकेंद्रवाद विश्वनागरिकतावाद के विपरीत है जोकि अन्य संस्कृतियों को उनके अंतर के कारण महत्त्व देती है। विश्वबंधुता पर्यवेक्षण में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के मूल्यों तथा आस्थाओं का मूल्यांकन अपने मूल्यों तथा आस्थाओं के अनुसार नहीं करता। यह विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को मानता तथा इन्हें अपने अंदर समायोजित करता है तथा एक दूसरे की संस्कृति को समृद्ध बनाने के लिए सांस्कृतिक विनिमय तथा लेन-देन को बढ़ावा देता है। विदेशी शब्दों को लगातार अपनी शब्दावली में शामिल करके अंग्रेज़ी भाषा अंतरराष्ट्रीय संप्रेषण का मुख्य साधन बनकर उभरी है। पुनः हिंदी फ़िल्मों के संगीत की लोकप्रियता को पाश्चात्य पॉप संगीत तथा साथ ही भारतीय लोकगीतों की विभिन्न परंपराओं तथा भंगड़ा और गज़ल जैसे अर्द्धशास्त्रीय संगीत से ली गई देन का परिणाम मान सकते हैं।

एक आधुनिक समाज सांस्कृतिक विभिन्नता का प्रशंसक होता है तथा बाहर से पड़ने वाले सांस्कृतिक प्रभावों के लिए अपने दरवाज़े बंद नहीं करता। परंतु ऐसे सभी प्रभावों को सदैव इस प्रकार शामिल किया जाता है कि ये देशीय संस्कृति के तत्त्वों के साथ मिल सकें। विदेशी शब्दों को शामिल करने के बावजूद अंग्रेज़ी अलग भाषा नहीं बन पाई और न ही हिंदी फिल्मों के संगीत ने अन्य जगहों से उधार लेने के बावजूद अपना स्वरूप खोया। विविध शैलियों, रूपों, श्रव्यों तथा कलाकृतियों को शामिल करने से विश्वव्यापी संस्कृति को पहचान प्राप्त होती है। आज सार्वभौमिक विश्व में, जहाँ संचार के आधुनिक साधनों से संस्कृतियों के बीच अंतर कम हो रहे हैं, एक विश्व्यापी पर्यवेक्षण प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संस्कृति को विभिन्न प्रभावों द्वारा सशक्त करने की स्वतंत्रता देता है।

बॉक्स में दिए गए शब्दों को देखें। क्या आपने ये शब्द सुनें हैं या बातचीत में कभी इनका प्रयोग किया है?

हिंग्लिश शीघ्र ही विश्व विजेता बनेगी

प्रचलित कुछ हिंग्लिश शब्दों में एयरडेश (ट्रेवल बॉय एयर), चड्डीस (अंडरपेंट्स), चाय (इंडियन टी), करोड़ (10 मिलियन), डकैत (थीफ), देसी (लोकल), डिक्की (बूट), गोरा (व्हाइट परसन), जंगली (अनकाउथ), लाख (100,000), लंपट (ठग), आप्टीकल (स्पेक्टिकल्स), प्रीपोन (ब्रिंग फॉरवर्ड), स्टेपनी (स्पेयर टायर) तथा वुड बी (फियांस या फियांसी) शामिल हैं। ...एक रिपोर्ट के अनुसार हिंग्लिश में ऐसे अनेक शब्द या वाक्यांश शामिल हैं जिन्हें ब्रिटेन या अमेरिकावासी शायद आसानी से न समझ सकें। इनमें से कुछ अप्रचलित शब्द जैसे 'पक्का' है, जो राज के स्मृति चिह्न हैं। अन्य नवनिर्मित शब्द भी हैं जैसे 'टाइमपास' जिसका अर्थ है समय व्यतीत करने के लिए कोई भी कार्य करना। भारत में व्यवसाय करने को आकर्षित करने की सफलता ने हाल ही में एक नयी क्रिया को जन्म दिया है। वे व्यक्ति जो किसी कंपनी के कर्मचारी न होकर भी भारत से उसके लिए कार्य करते हैं उन्हें 'बैंग्लोरड' कहा जाता है।

सांस्कृतिक परिवर्तन

सांस्कृतिक परिवर्तन वह तरीका है जिसके द्वारा समाज अपनी संस्कृति के प्रतिमानों को बदलता है। परिवर्तन के लिए प्रेरणा आंतरिक या बाहरी हो सकती है। उदाहरण के लिए, आंतरिक कारणों में, कृषि या खेती करने की नयी पद्धतियाँ, कृषि उत्पादन को बढ़ा सकती हैं जिससे खाद्य उपभोग की प्रकृति तथा कृषक समुदाय की जीवन शैली में परिवर्तन आ सकता है। दूसरी तरफ़ बाहरी हस्तक्षेप जीत या उपनिवेशीकरण के रूप में हो सकते हैं जिससे एक समाज के सांस्कृतिक आचरण तथा व्यवहार में गहरे परिवर्तन हो सकते हैं।

प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन, अन्य संस्कृतियों से संपर्क या अनुकूलन की प्रक्रियाओं द्वारा सांस्कृतिक परिवर्तन हो सकते हैं। प्राकृतिक वातावरण या पारिस्थितिकी में परिवर्तन से लोगों की जीवन शैली में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो सकते हैं। जब जंगलों में रहने वाले समुदायों को जंगलों तक जाने तथा इसकी उपज से कानूनी प्रतिबंधों के कारण या जंगलों के समाप्त होने के कारण रोका जाएगा तो इसके निवासियों तथा उनकी जीवन शैली पर अनेक विपरीत प्रभाव हो सकते हैं। उत्तर-पूर्वी भारत के साथ-साथ मध्य भारत में रहने वाले जनजातीय समुदायों पर जंगली संसाधनों में कमी का सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है।

विकासात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ क्रांतिकारी परिवर्तन भी हो सकते हैं। जब किसी संस्कृति में तीव्रता से बदलाव आता है और इसके मूल्यों तथा अर्थकारी व्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं, तभी क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। क्रांतिकारी परिवर्तनों की शुरुआत राजनीतिक हस्तक्षेप, तकनीकी खोज या पारिस्थितिकीय रूपांतरण के कारण हो सकती है। फ्रांसीसी क्रांति (1789) ने फ्रांसीसी समाज में श्रेणीक्रमता की इस्टेट व्यवस्था को नष्ट किया, राजतंत्र को समाप्त किया तथा अपने नागरिकों में समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुता के मूल्यों को जागृत किया। जब कोई अलग समझ प्रचलित होती है तो संस्कृति में परिवर्तन होते हैं। हाल के वर्षों में प्रचार तंत्र, इलैक्ट्रॉनिक तथा मुद्रण दोनों, में आश्चर्यजनक विस्तार हुआ है। क्या आप सोचते हैं कि प्रचार तंत्र ने विकासात्मक या क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं? अब हम संस्कृति के विभिन्न आयामों से परिचित हैं। व्यक्ति तथा समाज के बीच की पारंपरिक क्रिया, जिससे हमने अध्याय 1 में शुरुआत की थी, के बिंदु पर वापस आने के लिए अब हम समाजीकरण की संकल्पना की ओर चलते हैं।

3

समाजीकरण

मेरा विश्वास है कि हमारे चारों तरफ़ की सभी वस्तुएँ संपूर्ण जीवन में शामिल हैं–पौधे, पशु, अतिथि, पर्व, उत्सव, लड़ाइयाँ, मित्रता, साहचर्य, भेदभाव, घृणा। ये सभी तथा इससे ज़्यादा वस्तुएँ एक ही स्थान, मेरे घर में उपलब्ध थीं। यद्यपि तब कभी-कभी जीवन जटिल दिखाई देता था,

> मैं अब समझती हूँ कि यह कितना उत्कृष्ट था। मैं ऐसे बचपन की आभारी हूँ, शायद, कि मैंने कभी भी किसी पीड़ित व्यक्ति को देखा हो। मैं महसूस करती हूँ मैं इस सबकी संपूर्णता को समझ सकती हूँ (वैदेही 1945)।

जन्म के समय बच्चा, जिसे हम समाज कहते हैं या सामाजिक व्यवहार, उसके बारे में कुछ भी नहीं जानता है। परंतु जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह केवल भौतिक संसार के बारे में ही नहीं सीखता है अपितु अच्छे या बुरे लड़के / लड़की से क्या तात्पर्य है, यह भी सीखता है। वह जानता है कि किस प्रकार के व्यवहार की प्रशंसा होगी तथा किस प्रकार के व्यवहार को अनुमति नहीं मिलेगी। समाजीकरण को उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा असहाय शिशु धीरे-धीरे स्वयं जानकारी प्राप्त करता है व आत्म जागरूक बनता है, जो उस संस्कृति के तरीकों के बारे में भली-भाँति जानता है, जिसमें वह जन्म लेता है। वास्तव में समाजीकरण के बिना एक व्यक्ति मानव की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। आपमें से अधिकतर ने 'मिदनापुर के भेड़िए के बच्चे' की कहानी सुनी होगी। सन् 1920 में बंगाल में भेड़िए की गुफ़ा में दो वर्ष की दो बच्चियाँ पाई गई थीं। वे पशुओं की तरह चारों पैरों पर चलती थीं, कच्चा माँस खाना पसंद करती थीं, भेड़ियों की तरह चिल्लाती थीं तथा कोई भी भाषा नहीं जानती थीं। ऐसी घटनाओं के बारे में जानकारियाँ विश्व के अन्य भागों से भी प्राप्त हुई हैं।

हम अब तक समाजीकरण तथा नवजात शिशु के बारे में बातें कर रहे थे। परंतु बच्चे का जन्म उनके जीवन को भी बदल देता है, जो उसके पालन पोषण के लिए उत्तरदायी हैं। वे भी नए-नए अनुभवों को सीखते हैं। दादा-दादी तथा माता-पिता बनने पर नए-नए क्रियाकलापों तथा अनुभवों से गुज़रना होता है। बुर्ज़ुग व्यक्ति दादा-दादी बनकर भी माता-पिता ही रहते हैं। वास्तव में संबंधों को आगे बढ़ाने वाला संबंधों का यह समुच्चय विभिन्न पीढ़ियों को आपस में जोड़ता है। इसी तरह से युवा बच्चे का जीवन सहोदर भाई या बहन के जन्म से बदल जाता है। समाजीकरण जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है लेकिन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया आरंभिक वर्षों में घटित होती है जिसे प्रारंभिक समाजीकरण कहा जाता है। द्वितीयक समाजीकरण एक व्यक्ति के जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है।

हालाँकि समाजीकरण का प्रत्येक व्यक्ति पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है परंतु यह 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' की तरह से नहीं है जिसमें शिशु अपने संपर्क में आने वाले लोगों के प्रभाव को बिना किसी विरोध के ग्रहण करता है। नवजात शिशु भी अपनी इच्छा व्यक्त कर सकता है। जब भूख लगेगी तो वह चिल्लाएगा तथा तब तक चिल्लाता रहेगा जब तक उसकी देखभाल करने वाले कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते। आपने देखा होगा कि शिशु के जन्म से परिवार की सामान्य दैनिक क्रियाएँ किस प्रकार पूर्ण रूप से पुनःव्यवस्थित हो जाती हैं।

आपको पहले ही प्रस्थिति / भूमिका, सामाजिक नियंत्रण, समूहों तथा सामाजिक स्तरीकरण की संकल्पनाओं से अवगत कराया जा चुका है। आप यह भी जान चुके हैं कि संस्कृति, मानक तथा मूल्य क्या हैं। इन सभी संकल्पनाओं से यह जानने में सहायता मिलती है कि समाजीकरण

© NCERT not to be republished

की प्रक्रिया कैसे चलती है। प्रथम दृष्टि में एक बच्चा परिवार का सदस्य होता है। परंतु वह एक बड़े नातेदार समूह (बिरादरी, खानदान, गोत्र आदि) का भी सदस्य होता है जिसमें भाई, बहन तथा माता-पिता के अन्य संबंधी होते हैं। जिस परिवार में बच्चा जन्म लेता है, वह मूल या विस्तृत परिवार हो सकता है। यह एक बड़े समाज जैसेकि एक जनजाति या उपजाति, गोत्र या एक बिरादरी, एक धर्म और भाषाई समूह का सदस्य भी हो सकता है। इन समूहों तथा संस्थाओं की सदस्यता प्रत्येक सदस्य पर कुछ विशेष व्यावहारिक मानक तथा मूल्य लागू करती है। इन सदस्यताओं के अनुसार कुछ भूमिकाएँ भी निभानी होती हैं। जैसेकि एक पुत्र की, एक पुत्री की, एक पौत्र की या एक विद्यार्थी की ये बहुविध भूमिकाएँ हैं जिन्हें साथ-साथ निभाया जाता है। इन समूहों के मानकों, मनोवृत्तियों, मूल्यों या व्यावहारिक प्रतिमानों को सीखने की प्रक्रिया जीवन के प्रारंभ से शुरू होती है तथा जीवनपर्यंत चलती है।

एक व्यक्ति एक गाँव में रहता है या शहर में या वह किसी जनजाति से संबंधित है और यदि जनजाति से संबंधित है तो किस जनजाति से, इस सबके अनुसार एक समाज में विभिन्न जातियों, क्षेत्रों या सामाजिक वर्गों या धार्मिक समूहों से संबंधित विभिन्न परिवारो में मानदंड तथा मूल्य अलग-अलग हो सकते हैं। वास्तव में एक व्यक्ति जो भाषा बोलता है वह उस क्षेत्र पर आधारित होती है, जिससे वह संबंध रखता है। वह भाषा, भाषा के मौखिक रूप के नज़दीक है या मानक लिखित रूप के, यह परिवार तथा परिवार की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है।

समाजीकरण के अभिकरण

बच्चे का समाजीकरण उन अनेक अभिकरणों तथा संस्थाओं द्वारा किया जाता है जिनमें वह भाग लेता है, जैसे परिवार, स्कूल, समकक्ष समूह, अड़ोस-पड़ोस, व्यावसायिक समूह तथा सामाजिक वर्ग / जाति, क्षेत्र, धर्म आदि।

क्रियाकलाप-6

वे बातें बताएँ जिनमें एक घरेलू नौकर का बच्चा अपने आपको उस बच्चे से अलग समझे, जिसके परिवार में उसकी माँ काम करती है। साथ ही उन वस्तुओं के बारे में भी बताएँ जिन्हें वह आपस में बाँट सकते हैं या बदल सकते हैं।
प्रारंभ करने के लिए स्पष्ट है कि किसी के पास कपड़ों की खरीददारी हेतु अधिक धन होगा और दूसरा हो सकता है कि चूड़ियाँ ज़्यादा पहने...

हो सकता है वे एक ही सीरियल देखते हों, एक ही तरह के फ़िल्मी गानों को सुनते हों... हो सकता है कि वे एक दूसरे के लिए अलग-अलग प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग करते हों...

अब आपको कठिन क्षेत्रों के बारे में पता लगाना है, जैसेकि परिवार में, पड़ोस में तथा गली में सुरक्षा की भावना के बारे में...

क्रियाकलाप-7

आप के विचार में नीचे दी गई वस्तुओं में किस चीज़ की उपस्थिति या अनुपस्थिति आपको व्यक्तिगत रूप से सबसे ज़्यादा प्रभावित करेगी?

(स्वामित्त्व) टेलीविजन / वादक यंत्र...

(जगह) आपका अपना कमरा...

(समय) घर के कार्यों या अन्य कार्य के साथ विद्यालय के समय का सामंजस्य बैठाना...

(सुअवसर) यात्रा, संगीत की कक्षाएँ...

(आपके आस-पास के लोग)

परिवार

चूँकि परिवारिक व्यवस्थाएँ विस्तृत रूप में भिन्न होती हैं, अत: किसी भी तरह से शिशुओं के अनुभव विभिन्न संस्कृतियों में एक मानदंड के अनुसार नहीं होते। आप में से अनेक मूल परिवार में अपने माता-पिता तथा भाई-बहनों के साथ रह रहे होंगे, जबकि अन्य दूसरे विस्तृत पारिवारिक सदस्यों के साथ रह रहे होंगे। पहले मामले में माता-पिता समाजीकरण के मुख्य अभिकरण हो सकते हैं, जबकि दूसरे मामले में दादा-दादी, चाचा, चचेरे भाई या बहन का ज़्यादा महत्त्व हो सकता है।

एक समाज की समग्र संस्थाओं में परिवारों की 'स्थिति' अलग-अलग होती है। सबसे अधिक पारंपरिक समाजों में, जिस परिवार में व्यक्ति जन्म लेता है, वही उस व्यक्ति के पूरे जीवन की व्यक्तिगत सामाजिक स्थिति को निर्धारित करता है। यद्यपि जब इस प्रकार से जन्म पर सामाजिक स्थिति विरासत में प्राप्त नहीं होती हो परिवार का क्षेत्र तथा सामाजिक वर्ग, जिसमें वह जन्म लेता है, समाजीकरण के प्रतिमानों पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। बच्चे अपने-अपने माता-पिता या पड़ोस या समुदाय से व्यावहारिक विशेषताओं के तरीकों को ग्रहण करते हैं।

वास्तव में, कुछ बच्चे सामान्यतया अपने माता-पिता के दृष्टिकोण को बिना किसी विवाद के अपना लेते हैं। यह समकालीन विश्व में विशेष रूप से सही है, जहाँ परिवर्तन इतना अधिक व्यापक है। साथ ही समाजीकरण के अभिकरणों में वर्तमान विविधता के फलस्वरूप बच्चों, किशोरों तथा माता-पिता की पीढ़ियों के दृष्टिकोणों में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। क्या आप ऐसा कोई उदाहरण बता सकते हैं जहाँ आपने पाया हो कि आपके द्वारा परिवार में सीखी गई कोई चीज़ आपके समकक्ष समूह या प्रचार माध्यम या स्कूल से भी अलग हो?

समकक्ष समूह

समकक्ष समूह एक अन्य समाजीकरण अभिकरण है। समकक्ष समूह समान आयु के बच्चों के मैत्री समूह होते हैं। कुछ संस्कृतियों में, विशेषतया कुछ छोटे पारंपरिक समाजों में समकक्ष समूह औपचारिक रूप से एक ही आयु-श्रेणी के होते हैं। औपचारिक आयु-श्रेणी के बिना भी चार या

पाँच वर्ष की आयु के बच्चे सामान्यतया अपनी आयु के मित्रों के साथ काफ़ी समय व्यतीत करते हैं। 'समकक्ष' शब्द का अर्थ है 'समान' तथा युवा बच्चों के बीच मित्रता का आधार भी काफ़ी हद तक समानता ही होता है। एक प्रभावशाली या शारीरिक रूप से स्वस्थ बच्चा अन्य बच्चों पर प्रभुत्व जमाने का प्रयास कर सकता है। तथापि पारिवारिक स्थितियों में विरासत में मिली निर्भरता की तुलना में समकक्ष समूहों में लेन-देन अधिक होता है। अपनी शक्तियों के कारण माता-पिता अपने बच्चों पर आचरण संहिता लागू करने (विभिन्न मात्राओं में) में सफल होते हैं। इसके विपरीत, समकक्ष समूहों में, एक बच्चा विभिन्न प्रकार की अंत:क्रियाओं की खोज करता है जिसके दायरे में व्यवहार के नियमों को जाँचा जा सकता है तथा उनके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

क्रियाकलाप-8

अपने अनुभवों पर प्रकाश डालिए। अपने मित्रों के साथ की गई अपनी अंत:क्रिया की तुलना अपने माता-पिता तथा अन्य बड़ों से की गई अंत:क्रिया से करें। इनमें क्या अंतर है? पहले की गई भूमिकाओं एवं प्रस्थिति की चर्चा इन अंतरों को जानने में क्या आपकी सहायता करती है?

प्राय: समकक्ष संबंध व्यक्ति के लिए जीवनपर्यंत महत्त्वपूर्ण रहते हैं। समान आयु के लोगों के अनौपचारिक समूह काम की जगह पर, तथा अन्य संदर्भों में, व्यक्ति की मनोवृत्तियों तथा व्यवहार को निर्धारित करने में प्राय: महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

विद्यालय

विद्यालय एक औपचारिक संगठन है, यहाँ पढ़ाए जाने वाले विषयों की एक निश्चित पाठ्यचर्या होती हैं। तथापि स्कूल भी एक हद तक समाजीकरण के अभिकरण होते हैं। कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार औपचारिक पाठ्यक्रम के साथ-साथ बच्चों को सिखाने के लिए कुछ अप्रत्यक्ष पाठ्यक्रम भी होता है। भारत तथा दक्षिणी अफ्रीका में कुछ ऐसे स्कूल हैं जहाँ लड़कों से कभी-कभार परंतु लड़कियों से हमेशा अपने कमरे साफ़ करने की आशा की जाती है। कुछ स्कूलों में, इसके समाधान के लिए प्रयास किए जाते हैं जिसके तहत लड़कों तथा लड़कियों से ऐसे काम करने को कहा जाता है जिनके बारे में सामान्यतया उनसे आशा नहीं की जाती। क्या आप ऐसे उदाहरणों पर विचार कर सकते हैं, जो दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हों?

जन-माध्यम

जन-माध्यम हमारे दैनिक जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुके हैं। आज इलैक्ट्रॉनिक माध्यम जैसेकि दूरदर्शन का विस्तार हो रहा है। मुद्रण माध्यम का महत्त्व भी लगातार बना हुआ है। भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में मुद्रित माध्यम के आरंभिक वर्षों में भी अनेक भाषाओं में 'आचरण पुस्तकें' काफ़ी लोकप्रिय थीं जिनमें यह बताया जाता था कि महिलाएँ एक अच्छी गृहणी तथा अच्छी पत्नी कैसे बन सकती हैं। जन-माध्यमों

के द्वारा सूचना ज़्यादा लोकतांत्रिक ढंग से पहुँचाई जा सकती है। इलैक्ट्रॉनिक संचार एक ऐसा माध्यम है जो ऐसे गाँवों में भी पहुँच सकता है जो न तो सड़कों द्वारा अन्य क्षेत्रों से जुड़े हैं और न ही वहाँ साक्षरता केंद्र स्थापित हुए हैं।

बच्चों तथा बड़ों पर दूरदर्शन के प्रभाव पर अत्यधिक अनुसंधान किए गए हैं। ब्रिटेन में हुए एक अध्ययन में पाया गया है कि बच्चों द्वारा टेलीविजन देखने पर व्यय किया गया समय एक साल में लगभग एक सौ स्कूली दिवसों के समान है तथा इसमें बड़े भी पीछे नहीं हैं। ऐसे मात्रात्मक पक्षों के अतिरिक्त ऐसे अनुसंधान कार्य में जो अन्य परिणाम उभरकर सामने आते हैं वह सदैव निर्णायक नहीं होते हैं। टेलीविजन के परदे पर हिंसा तथा बच्चों के बीच आक्रामक व्यवहार का संबंध अभी भी चर्चा का विषय है।

क्रियाकलाप-9

आप शायद जानना चाहेंगे कि लोग अपने आसपास के परिवेश के विपरीत परिवेशों में बने धारावाहिकों से खुद को कैसे जोड़ते हैं। और यदि बच्चे अपने दादा-दादी के साथ टेलीविजन देख रहे हैं तो कौन से कार्यक्रम देखने योग्य हैं, क्या इस पर उनमें असहमति है? यदि ऐसा है तो उनके दृष्टिकोण में क्या अंतर पाया गया? क्या इन अंतरों में क्रमशः संशोधन होता है?

यदि कोई व्यक्ति लोगों पर जन-माध्यमों के प्रभाव का पता नहीं लगा सकता, लेकिन प्रभाव की मात्रा, जानकारी तथा अपने क्षेत्र से दूरस्थ क्षेत्रों के अनुभव के बारे में पता लगाया जा सकता है। भारतीय दूरदर्शन के धारावाहिकों तथा फ़िल्मों के काफ़ी दर्शक नाईजीरिया, अफगानिस्तान तथा तिब्बत के प्रवासी हैं। महाभारत का अनुवाद करके ताशकंद में प्रसारित किया गया, परंतु इसे बिना अनुवाद किए लंदन में उन बच्चों द्वारा देखा गया जो केवल अंग्रेज़ी बोलते थे।

अन्य समाजीकरण अभिकरण

दिए गए समाजीकरण अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य समूह या सामाजिक परिस्थितियाँ हैं जहाँ व्यक्ति अपने जीवन का काफ़ी समय व्यतीत करते हैं। सभी संस्कृतियों में कार्यस्थल एक ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान है जहाँ समाजीकरण प्रक्रिया चलती है यद्यपि ऐसा औद्योगिक समाजों

यह रिपोर्ट देखें और चर्चा करें कि जन-माध्यम बच्चों पर कैसे प्रभाव डालते हैं

एक मनोवैज्ञानिक का कहना है कि "कुछ वर्ष पूर्व प्रसारित शक्तिमान धारावाहिक को देखकर बच्चे इमारतों से कूदने की कोशिश करते थे जिसके परिणाम घातक होते थे। नकल करके सीखने की पद्धति लोगों द्वारा अपनाई जाती है और बच्चे इसके अपवाद नहीं हैं।"

में ही है जहाँ काफ़ी संख्या में लोग 'काम करने जाते हैं'–अर्थात हर रोज़ घर से काफ़ी हद तक अलग स्थानों पर कार्य के लिए जाना। पारंपरिक समुदायों में अनेक लोग अपने रहने के स्थान के निकट ही ज़मीन जोतते हैं या उनकी कार्यशालाएँ उनके निवास स्थानों में होती हैं (पृष्ठ संख्या 50 के चित्रों को देखें)।

समाजीकरण तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता

यह शायद सही है कि सामान्य परिस्थितियों में समाजीकरण लोगों को कभी भी अनुरूपता तक नहीं ला सकता। संघर्ष को अनेक कारण बढ़ावा देते हैं। समाजीकरण के अभिकरणों, विद्यालय तथा घर, घर तथा समकक्ष समूहों के बीच संघर्ष हो सकते हैं। तथापि जिस सांस्कृतिक परिवेश में हम जन्म लेते हैं तथा परिपक्व होते हैं, उसका हमारे व्यवहार पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है मानो हमारी किसी भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता या इच्छा को छीन लिया गया हो। ऐसा विचार मूलतः गलत है। तथ्य यह है कि जन्म से मृत्यु तक हम अन्य व्यक्तियों के साथ अंत:क्रियाओं के द्वारा अपने व्यक्तित्व, अपने मूल्यों तथा अपने व्यवहार को निखारने में संलग्न रहते हैं। अतः समाजीकरण भी हमारे व्यक्तित्व तथा स्वतंत्रता के मूल मे है। समाजीकरण के दौरान हममें से प्रत्येक में स्वयं की पहचान की भावना तथा स्वतंत्र विचारों एवं कार्यों के लिए क्षमता विकसित होती है।

समाजीकरण का लिंगकरण कैसे होता है?

हम लड़के गलियों का प्रयोग अनेक वस्तुओं के लिए करते हैं–एक स्थान की तरह, जहाँ खड़े होकर आस-पास देखते हैं, दौड़ने तथा खेलने के लिए, अपनी मोटरसाइकिलों पर विभिन्न करतब करने के लिए। लड़कियों के लिए ऐसा नहीं है। जैसाकि हम हर समय देखते हैं, लड़कियों के लिए गलियाँ विद्यालयों से सीधे घर जाने के लिए हैं। तथा गली के इस सीमित प्रयोग के लिए भी वे सदा झुंड में जाती हैं, शायद इसके पीछे उनमें मौजूद छेड़खानी का भय है (कुमार 1986)।

क्रियाकलाप-11

हमने चार अध्याय पूरे कर लिए हैं। अगले पृष्ठ की विषय-वस्तु को ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा निम्नलिखित प्रसंगों पर चर्चा करें।

- बड़ों के विरुद्ध लड़कियों के विद्रोह में व्यक्ति तथा समाज के बीच संबंध।
- कस्बों तथा गाँव में संस्कृति के मानकीय आयाम कैसे अलग हैं?
- प्रदत्त प्रस्थिति पर प्रश्न, जिसके तहत पुजारी की बेटी को घंटी छूने की अनुमति है।
- समाजीकरण के अभिकरणों में विरोधाभास जोकि अगले पृष्ठ की पठन-सामग्री में दिया गया है। उदाहरण के लिए "वह शुक्रगुज़ार थी कि उसके स्कूल के मित्रों ने उसे इस हालत में नहीं देखा..." क्या आप कोई ऐसा अन्य वाक्य ढूँढ़ सकते हैं जो इसे दर्शाता हो?
- लिंगकरण = बालों में कंघी करना + रक्षा के लिए किसी के साथ जाना + फुटबाल न खेलना
- सज़ा = चुप्पी साधना + पापड़म (केरल में पापड़ को पापड़म कहते हैं) की संदेहभरी अनुपस्थिति

आज शाम मंदिर जाने के लिए वह असामान्य रूप से उत्सुक थी। दोपहर के भोजन पर जब उसने मंदिर के सामने जाकर घंटी बजाने का अपना निर्णय सुनाया तो उसके तथा बड़ों के बीच तर्क हो गया। उसने उत्तेजित होकर कहा, "यदि थंगम घंटी बजा सकती है तो मैं भी बजा सकती हूँ।"

उन्होंने घबराई हुई आवाज़ में इसका विरोध किया, "थंगम मंदिर के पुजारी की बेटी है, उसको घंटी छूने की अनुमति है।"

उसने गुस्से में उत्तर दिया कि थंगम हर रोज़ दोपहर में लुका-छुपी का खेल खेलने आती है तथा किसी से भी अलग ढंग से व्यवहार नहीं करती। इसके अतिरिक्त, उन्हें भड़काने के लिए उसने जान-बूझकर कहा "हम भगवान की नज़रों में समान हैं।" उसे पूरा विश्वास नहीं था कि उन्होंने इस उक्ति को सुना है क्योंकि उन्होंने पहले ही खीझकर मुँह फेर लिया था। परंतु दोपहर के भोजन के बाद उसने उन्हें कहते हुए पाया कि वह गलत अंग्रेज़ी स्कूल में जाती है जिसका अर्थ है कि उन्होंने सुन लिया था...

उसे विश्वास था कि उन्होंने उसकी बात को गंभीरता से नहीं लिया था। बड़े व्यक्तियों के साथ यही समस्या है– वे सदैव मानकर चलते थे, उसके बड़े होने पर जब वे उसे बताएँगे तो वह हर बात समझ जाएगी, वह उनकी बुद्धिमत्ता तथा सत्ता को बिना कोई प्रश्न किए स्वीकार कर लेगी और उनके विरुद्ध जाने की बात सपने में भी नहीं सोचेगी। अच्छा, इस बार वह उन्हें दिखा देगी... घर पर पुनः उसको बाल संवारने की तकलीफ़देह स्थिति से गुज़रना पड़ा। उसकी दादी ने उसके बालों में एक जार भरकर तेल डाला, प्रत्येक चमकती लट को सीधा होने तक अलग-अलग किया और इसे ज़ोर से खींचकर उसके सर के ऊपर बाँध दिया। वह शुक्रगुज़ार थी कि उसके स्कूल के मित्रों ने उसे इस हालत में नहीं देखा...

वे यह क्यों नहीं समझते कि उसकी रक्षा के लिए किसी के साथ जाने से वह कितना उपहासजनक महसूस करती थी... उसने अपनी माता को बार-बार याद दिलाया है कि जब वे कस्बे में रहते थे तो वह रोज़ स्कूल अकेली जाती थी। उसने देखा कि कृष्ण मंदिर के बगल में बने प्रांगण में फुटबाल का खेल पहले ही प्रारंभ हो चुका था... वह खिलाड़ियों को देखकर आनंदित होती थी, विशेषतया उसकी रुचि खेल की सक्रियता में थी, तथा कर्कश आवाज़ में की गई टिप्पणियों में भी, जिनसे केलू नैयर बहुत चिढ़ता था...

वह जल्दी से भीड़-भाड़ वाले मंदिर पर आई... इससे पहले कि वह अपने निर्णय पर पश्चाताप करे या वापस जाए, उसने तेज़ी से स्त्रियों के झुंड को पार किया जो फिसलन भरी सीढ़ियों पर लगभग लड़खड़ा रहा था। बड़ी सी घंटी को देखकर वह उत्साह से भर गई, वह केलू नैयर की क्रोधभरी धमकियों को पहचान सकती थी, परंतु वह वहाँ गई, घंटी को एक आवाज़ करती टन-टन से बजाया तथा कैलू नायर के यह महसूस करने से पहले कि क्या हो रहा है, वह सीढ़ियों से नीचे आ गई।

जब कैलू नैयर ने उसे खींचकर मंदिर से बाहर किया उसने धीरे-धीरे क्रोधित चेहरों और मंद होती फुसफुसाहटों को सुना... वह अत्यधिक अपमानित महसूस कर रही थी। उनका मौन उनकी आवाज़ से ज़्यादा अर्थपूर्ण था, ठीक इसी तरह से रात्रि भोज पर उसके प्रिय पापड़म की अनुपस्थिति...

(साभार–द *बेल,* गीता कृष्णकुट्टी)

शब्दावली

सांस्कृतिक विकासवाद–यह संस्कृति का एक सिद्धांत है, जो यह तर्क देता है कि प्राकृतिक स्पीशीज़ की तरह ही संस्कृति का विकास भी विभिन्नता तथा प्राकृतिक चयन द्वारा होता है।

इस्टेट व्यवस्था–सामंतवादी यूरोप में व्यवसाय के अनुसार श्रेणी प्रदान करने की एक व्यवस्था थी। कुलीनता, पुरोहित वर्ग तथा 'तृतीय इस्टेट' तीन तरह की इस्टेट्स थी। अंतिम इस्टेट मुख्यतया व्यवसायियों तथा मध्यम वर्ग के लोगों की थी। प्रत्येक इस्टेट अपने प्रतिनिधि का स्वयं चयन करती थी। किसानों तथा मज़दूरों को वोट देने का अधिकार नहीं था।

बृहत परंपरा–इसमें सांस्कृतिक विशेषताएँ या परंपराएँ शामिल हैं जो लिखित हैं तथा समाज के शिक्षित एवं सीखे हुए अभिजात वर्ग द्वारा व्यापक रूप से स्वीकृत हैं।

लघु परंपरा–इसमें संस्कृति की मौखिक विशेषताएँ या परंपराएँ शामिल हैं जो मौखिक है तथा ग्रामीण स्तर पर स्वीकृत हैं।

स्वयं की छवि–दूसरों की निगाह में आपकी छवि।

सामाजिक भूमिकाएँ–यह किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति या प्रस्थिति के साथ जुड़े अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं।

समाजीकरण–वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम समाज का सदस्य बनना सीखते हैं।

उप-संस्कृति–एक बड़ी संस्कृति के अंदर लोगों के ऐसे समूह का निर्धारण करना जो प्रतीकों, मूल्यों तथा आस्थाओं को बड़ी संस्कृति से अकसर उधार लेता है तथा प्राय: इन्हें विकृत, अतिरंजित या विपरीत कर देता है ताकि अपने आप को अलग दर्शा सके।

अभ्यास

1. समाजिक विज्ञान में संस्कृति की समझ, दैनिक प्रयोग के शब्द 'संस्कृति' से कैसे भिन्न है?
2. हम कैसे दर्शा सकते हैं कि संस्कृति के विभिन्न आयाम मिलकर समग्र बनाते हैं?
3. उन दो संस्कृतियों की तुलना करें जिनसे आप परिचित हों। क्या नृजातीय नहीं बनना कठिन नहीं हैं?
4. सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए दो विभिन्न उपागमों की चर्चा करें।

© N ... ned

5. क्या विश्वव्यापीकरण को आप आधुनिकता से जोड़ते हैं? नृजातीयता का प्रेक्षण करें तथा उदाहरण दें।
6. आपके अनुसार आपकी पीढ़ी के लिए समाजीकरण का सबसे प्रभावी अभिकरण क्या है? यह पहले अलग कैसे था, आप इस बारे में क्या सोचते है?

सहायक पुस्तकें

आरमिलास, पेड्रो. 1968. 'द कॉनसेप्ट ऑफ सिविलाइज़ेशन', सिल्स, डेविड (सं.) द *इंटरनेशनल एंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साईंस*. फ्री प्रेस–मेकमिलन, न्यूयार्क।

बर्जर, पी.एल. 1963. *इंविटेशन टू सोशियोलॉजी: ए ह्यूमनिस्टिक पर्सपेक्टिव*. पेंग्विन, हरमंड्सवर्थ।

ग्रीटज, क्लिफोर्ड. 1973. द *इंटरप्रेटेशन ऑफ कल्चर्स*. बेसिक बुक्स, न्यूयार्क।

गिडिंस, एंथोनी. 2001. *सोशियोलॉजी*. पोलिटी प्रेस, केंब्रीज।

इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी (इग्नू). इकाई 9. *एजेंसीज़ ऑफ सोशलाइज़ेशन।*

इंदिरा गाँधी नेशनल ओपन युनिवर्सिटी (इग्नू). इकाई 8. *नेचर ऑफ़ सोशलाइज़ेशन।*

कोटक, कोनार्ड पी. 1994. *एन्थ्रोपोलॉजी* : द *एक्सप्लोरेशन ऑफ़ ह्यूमन डाइवर्सिटी*. छठा संस्करण, मैग्रा–हिल, न्यूयार्क।

कुमार, कृष्ण. 1986. 'ग्रोइंग अॅप मेल', *सेमिनार*. नं. 318, फरवरी।

लार्किन, ब्रॉयन. 2002. 'इंडियन फ़िल्म्स एंड नाइजीरिया लवर्स, मीडिया एंड द क्रिएशन ऑफ़ पैरेलल मॉडर्निटीज़', ज़ेवियर, जोनथन. और रोज़ेल्डो, रेनाटो. (सं). द *एंथ्रोपोलॉजी ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन : ए रीडर*. ब्लेकवेल, मालडेन।

मैलिनोवस्की, ब्रोनिस्लाव. 1931. 'कल्चर', सेलिंगमेन. (सं). *एंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द सोशल साइंसेज़*. मेकमिलन, न्यूयार्क।

मुखर्जी, डी.पी. 1948/1979. *सोशियोलॉजी ऑफ़ इंडियन कल्चर*. रावत पब्लिकेशंस. जयपुर।

टायलर, एडवर्ड बी. 1871/1958. *प्रिमिटिव कल्चर : रिसर्चेज़ ऑन टू द डवलपमेंट ऑफ़ मायथोलोजी, फिलासफी रिलिजन, आर्ट एंड कस्टम*. 2 वॉल्यूमस. वाल्यूम 1: *ओरिजन ऑफ़ कल्चर*. वाल्यूम :2 *रिलिजन इन प्रिमिटिव कल्चर*. मास स्मिथ, ग्लूकास्टर।

© NCERT not to be republished

वोग्ट, इवान जैड. 1968. 'कल्चर चेंज', सिल्स, डेविड. (सं). द *इंटरनेशनल एंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साइंस.* फ्री प्रेस-मैकमिलन, न्यूयार्क।

विलियम्स, रेमंड. 1976. *कीवर्डस : ए वोकेबुलरी ऑफ़ कल्चर एंड सोसायटी.* फोनटाना/क्रुम हेल्म, लंदन।

© NCERT not to be republished

अध्याय 5

समाजशास्त्र–अनुसंधान पद्धतियाँ

I

परिचय

क्या आपको कभी आश्चर्य हुआ है कि समाजशास्त्र जैसे विषय को सामाजिक विज्ञान क्यों कहा जाता हैं? अन्य किसी विषय की तुलना में समाजशास्त्र उन वस्तुओं के बारे में ज़्यादा चर्चा करता है जिनके बारे में अधिकांश लोग पहले से जानते हैं। हम सब एक समाज में रहते हैं तथा हम पहले से ही समाजशास्त्र की विषय-वस्तु सामाजिक समूहों, संस्थाओं, मानकों, संबंधों तथा अन्य के बारे में अपने अनुभवों के द्वारा काफ़ी हद तक जानते हैं। तब यह पूछना उचित लगता है कि वह क्या है जो समाजशास्त्रियों को समाज के अन्य लोगों से अलग बनाता हैं। उन्हें सामाज-विज्ञानी क्यों कहा जाए?

अन्य सभी वैज्ञानिक विषयों की तरह यहाँ भी पद्धतियाँ या कार्यविधियाँ महत्त्वपूर्ण हैं जिनके द्वारा ज्ञान एकत्रित होता है। अंतिम विश्लेषण में समाजशास्त्री आम व्यक्तियों से अलग होने का दावा कर सकते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि वे कितना जानते हैं या वे क्या जानते हैं, परंतु इसका कारण है कि वे अपने ज्ञान को कैसे प्राप्त करते हैं। यही एक कारण है कि समाजशास्त्र में पद्धति का विशेष महत्त्व है।

पिछले अध्याय में आपने देखा है कि समाजशास्त्र की लोगों के जीवंत अनुभवों में गहरी रुचि है। उदाहरण के लिए, मित्रता या धर्म या बाज़ारों में मोल-भाव करने जैसी सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन करते समय समाजशास्त्री सिर्फ़ दर्शकों का प्रेक्षण ही नहीं करना चाहते अपितु इसमें शामिल लोगों की भावनाएँ तथा विचार भी जानना चाहते हैं। समाजशास्त्री उन लोगों के मत को अपनाना चाहते हैं जिनका वे अध्ययन करते हैं तथा विश्व को उनकी आँखों से देखना चाहते हैं। विभिन्न संस्कृतियों में लोगों के लिए मैत्री का अर्थ क्या है? जब कोई व्यक्ति कोई विशेष अनुष्ठान करता है तो वह धार्मिक व्यक्ति क्या सोचता है कि वह क्या कर रहा है? एक दुकानदार तथा ग्राहक बेहतर मूल्य पाने के लिए शब्दों तथा भावभंगिमाओं को

परस्पर कैसे समझते हैं? ऐसे प्रश्नों का उत्तर इसमें शामिल व्यक्तियों के जीवंत अनुभव का एक भाग है तथा इनमें समाजशास्त्र की गहन रुचि है। अध्ययन में जो लोग शामिल हैं और जो लोग शामिल नहीं हैं, दोनों के मतों को समझने की आवश्यकता समाजशास्त्र में पद्धति के विशेष महत्त्व का एक अन्य कारण है।

2

कुछ पद्धतिशास्त्रीय मुद्दे

हालाँकि 'पद्धति' शब्द के स्थान पर इसे (समानार्थक होने के कारण) प्रायः साधारण रूप से प्रयोग किया जाता है। वास्तव में 'पद्धतिशास्त्र' शब्द का आशय अध्ययन की पद्धति से है। पद्धतिशास्त्रीय मुद्दों या प्रश्नों का संबंध वैज्ञानिक ज्ञान इकट्ठा करने की सामान्य समस्या के बारे में है जो किसी विशेष पद्धति, तकनीक या कार्यविधि से परे है। हम उन तरीकों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे जिनसे समाजशास्त्री वह ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है जो वैज्ञानिक होने का दावा कर सकता हो।

समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठता तथा व्यक्तिपरकता

दैनिक जीवन की भाषा में 'वस्तुनिष्ठ' का आशय पूर्वाग्रह रहित, तटस्थ या केवल तथ्यों पर आधारित होता है। किसी भी वस्तु के बारे में वस्तुनिष्ठ होने के लिए हमें वस्तु के बारे में अपनी भावनाओं या मनोवृत्तियों को अवश्य अनदेखा करना चाहिए। दूसरी तरफ़ 'व्यक्तिपरक' से तात्पर्य है कुछ ऐसा जो व्यक्तिगत मूल्यों तथा मान्यताओं पर आधारित हो। जैसाकि आपने पहले भी सीखा होगा कि सभी विज्ञानों से 'वस्तुनिष्ठ' होने व केवल तथ्यों पर आधारित पूर्वाग्रह रहित ज्ञान उपलब्ध कराने की आशा की जाती है, परंतु प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में समाजिक विज्ञानों में ऐसा करना बहुत कठिन है।

उदाहरण के लिए, जब एक भू-वैज्ञानिक चट्टानों का अध्ययन करता है या एक वनस्पतिशास्त्री पौधों का अध्ययन करता है तो वे सावधान रहते हैं कि उनके व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या मान्यताएँ उनके काम को प्रभावित न कर पाएँ। उन्हें तथ्यों को वैसे ही प्रस्तुत करना चाहिए जैसे वे हैं। उदाहरण के लिए, उन्हें अपने अनुसंधान कार्य के परिणामों पर किसी विशेष वैज्ञानिक सिद्धांत या सिद्धांतवादी के प्रति अपनी पसंद का प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहिए। तथापि भू-वैज्ञानिक तथा वनस्पतिशास्त्री स्वयं उस संसार का हिस्सा नहीं होते जिनका वे अध्ययन करते हैं, जैसे चट्टानों या पौधों की प्राकृतिक दुनिया। इसके विपरीत समाज-विज्ञानी उस संसार का अध्ययन करते हैं जिसमें वे स्वयं रहते हैं—जो मानव संबंधों की सामाजिक दुनिया है। इससे समाजशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञान में वस्तुनिष्ठता की विशेष समस्या उत्पन्न होती है।

सबसे पहले पूर्वाग्रह की स्पष्ट समस्या है क्योंकि समाजशास्त्री भी समाज के सदस्य हैं, उनकी भी लोगों की तरह सामान्य पसंद तथा नापसंद होती है। पारिवारिक संबंधों का अध्ययन करने वाला समाजशास्त्री भी स्वयं एक परिवार का सदस्य होगा तथा उसके अनुभवों का उस

पर प्रभाव हो सकता है। यहाँ तक कि समाजशास्त्री को अपने अध्ययनशील समूह के साथ कोई प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव न होने पर भी उसके अपने सामाजिक संदर्भों के मूल्यों तथा पूर्वाग्रहों से प्रभावित होने की संभावना रहती है। उदाहरणार्थ; अपने से अलग किसी जाति या धार्मिक समुदाय का अध्ययन करते समय समाजशास्त्री उस समुदाय की कुछ मनोवृत्तियों से प्रभावित हो सकता है जोकि उसके अपने अतीत या वर्तमान के सामाजिक वातावरण में प्रचलित हैं। समाजशास्त्री इन खतरों से कैसे बचते हैं?

इसकी पहली पद्धति अनुसंधान के विषय के बारे में अपनी भावनाओं तथा विचारों को लगातार कठोरता से जाँचना है। अधिकांशतः समाजशास्त्री अपने कार्य के लिए किसी बाहरी व्यक्ति के दृष्टिकोण को ग्रहण करने का प्रयास करते हैं। वे अपने आपको तथा अपने अनुसंधान कार्य को दूसरे की आँखों से देखने का प्रयास करते हैं। इस तकनीक को 'स्ववाचक' या कभी-कभी 'आत्मवाचक' कहते हैं। समाजशास्त्री लगातार अपनी मनोवृत्तियों तथा मतों की स्वयं जाँच करते रहते हैं। वह अन्य व्यक्तियों के मतों को सावधानीपूर्वक अपनाते रहते हैं, विशेष रूप से उनके मतों को जो उनके अनुसंधान का विषय होते हैं।

आत्मवाचकता का एक व्यावहारिक पहलू है किसी व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्य का सावधानीपूर्वक दस्तावेज़ीकरण करना। अनुसंधान पद्धतियों की श्रेष्ठता के दावे का एक हिस्सा सभी कार्यविधियों के दस्तावेज़ीकरण तथा साक्ष्य के सभी स्रोतों के औपचारिक संदर्भ में निहित है। यह सुनिश्चित करता है कि हमारे द्वारा किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु किए गए उपायों को अन्य अपना सकते है तथा वे स्वयं देख सकते हैं, हम सही हैं या नहीं। इससे हमें अपनी सोच या तर्क की दिशा को परखने या पुनः परखने में भी सहायता मिलती है।

तथापि समाजशास्त्री स्ववाचक होने का कितना भी प्रयास करे, अवचेतन पूर्वाग्रह की संभावना सदा रहती है। इस संभावना से निपटने के लिए समाजशास्त्री अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के उन लक्षणों को स्पष्ट रूप में उल्लिखित करते हैं जो कि अनुसंधान के विषय पर संभावित पूर्वाग्रह के स्रोत के रूप में प्रासंगिक हो सकते हैं। यह पाठकों को पूर्वाग्रह की संभावना से सचेत करता है तथा अनुसंधान अध्ययन को पढ़ते समय यह उन्हें मानसिक रूप से इसकी 'क्षतिपूर्ति' करने के लिए तैयार करता है। (अध्याय 1 के उस अनुभाग (पृष्ठ 8-9) को आप पुनः पढ़ सकते हैं, जिसमें सामान्य बौद्धिक ज्ञान तथा समाजशास्त्र में अंतर के बारे में चर्चा की गई है।)

समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठता के साथ एक अन्य समस्या यह तथ्य है कि सामान्यतः सामाजिक विश्व में 'सत्य' के अनेक रूप होते हैं। वस्तुएँ विभिन्न लाभ के बिंदुओं से अलग-अलग दिखाई देती हैं तथा इसी कारण से सामाजिक विश्व में सच्चाई के अनेक प्रतिस्पर्धी रूप या व्याख्याएँ शामिल हैं। उदाहरणार्थ; 'सही' कीमत में बारे में एक दुकानदार तथा एक ग्राहक के अत्यंत अलग-अलग विचार हो सकते हैं, एक युवा

व्यक्ति तथा एक बुजुर्ग व्यक्ति के लिए 'अच्छे भोजन' या इसी तरह से अन्य विषयों के बारे में अलग-अलग विचार हो सकते हैं। कोई भी ऐसा सरल तरीका नहीं हैं जिससे किसी विशेष व्याख्या के सत्य या अधिक सही होने के बारे में निर्णय लिया जा सके एवं प्रायः इन शर्तों के तहत सोचना भी लाभप्रद नहीं होता। वास्तव में समाजशास्त्र इस तरीके से जाँचने का प्रयास भी नहीं करता क्योंकि इसकी वास्तविक रुचि इसमें होती है कि लोग क्या सोचते हैं तथा वे जो सोचते हैं, वैसा क्यों सोचते हैं।

क्रियाकलाप-1

क्या आप दूसरों को जैसे देखते हैं, उसी तरह अपने आप को भी देख सकते हैं? आप अपने बारे में-(क) अपने श्रेष्ठ मित्र, (ख) अपने विरोधी, (ग) अपने शिक्षक के दृष्टिकोण से एक संक्षिप्त विवरण लिखिए। आपको आवश्यक तौर पर खुद को उनकी जगह रखकर उनकी तरह अपने बारे में सोचना होगा। अपना विवरण देते समय अपने लिए 'मैं' या 'मुझे' के स्थान पर अन्य व्यक्ति के रूप में 'वह' लिखना याद रखें। इसके पश्चात आप अपनी कक्षा के सहयोगियों द्वारा लिखे गए समान विवरणों को देखें। एक दूसरे के विवरणों पर चर्चा करें। आप इन्हें कितना सही या रोचक पाते हैं? क्या इन विवरणों में कोई आश्चर्यजनक बात है?

एक अन्य समस्या स्वयं समाजिक विज्ञानों में उपस्थित बहुविध मतों से उत्पन्न होती है। समाजिक विज्ञान की तरह समाजशास्त्र भी एक 'बहु-निर्देशात्मक' विज्ञान है। इसका अर्थ है कि इस विषय में प्रतिस्पर्धी तथा परस्पर विरोधी विचारों वाले क्षेत्र विद्यमान हैं। (समाज के विरोधी सिद्धांतों के विषय में अध्याय 2 में हुई चर्चा को याद करें)।

इन सबसे समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठता एक बहुत कठिन तथा जटिल वस्तु बन जाती है। वास्तव में, वस्तुनिष्ठता की पुरानी धारणा को व्यापक तौर पर एक पुराना दृष्टिकोण माना जाता है। समाज-विज्ञानी अब विश्वास नहीं करते कि 'वस्तुनिष्ठता एवं अरुचि' की पारंपरिक धारणा, समाजिक विज्ञान में प्राप्त की जा सकती है। वास्तव में ऐसे आदर्श भ्रामक हो सकते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि समाजशास्त्र के माध्यम से कोई लाभप्रद ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता या वस्तुनिष्ठता एक व्यर्थ संकल्पना है। इसका तात्पर्य है कि वस्तुनिष्ठता को पहले से प्राप्त अंतिम परिणाम के स्थान पर लक्ष्य प्राप्ति हेतु निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया के रूप में सोचा जाना चाहिए।

बहुविधि पद्धतियाँ तथा पद्धतियों का चयन

क्योंकि समाजशास्त्र में बहुविध सच्चाइयाँ तथा बहुविध दृष्टिकोण होते हैं, यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि इसमें बहुविध पद्धतियाँ भी हैं। समाजशास्त्रीय सच्चाई की ओर कोई भी एक रास्ता नहीं जाता। हालाँकि विभिन्न प्रकार के अनुसंधान संबंधी प्रश्नों को हल करने के लिए अनेक विधियाँ हैं जो अधिकतम या न्यूनतम उपयोगी हैं। तथापि प्रत्येक पद्धति का अपना महत्त्व तथा कमज़ोरी होती है। अतः पद्धतियों

की श्रेष्ठता या निम्नता के बारे में तर्क करना निरर्थक है। यह जानना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है कि पूछे जा रहे प्रश्न का उत्तर देने के लिए चयन की गई पद्धति क्या उपयुक्त है।

उदाहरणार्थ; यदि कोई यह जानना चाहे कि क्या अधिकांश भारतीय परिवार अभी तक 'संयुक्त परिवार' हैं तो इसके लिए जनगणना या सर्वेक्षण श्रेष्ठ पद्धतियाँ होंगी। तथापि यदि कोई व्यक्ति संयुक्त और मूल परिवारों में स्त्रियों की स्थिति की तुलना करना चाहे तो साक्षात्कार, वैयक्तिक अध्ययन या सहभागी प्रेक्षण उपयुक्त पद्धतियाँ हो सकती हैं।

समाजशास्त्रियों द्वारा सामान्यतया प्रयोग की जाने वाली विभिन्न पद्धतियों का वर्गीकरण या श्रेणीकरण करने के बहुत से तरीके हैं। उदाहरण के लिए मात्रात्मक तथा गुणात्मक पद्धतियों में अंतर करना परंपरागत है–पहली पद्धति में गणना की जाती है या घटकों को नापा (समानुपात, औसत तथा इसी तरह से अन्य) जाता है जबकि दूसरी पद्धति अत्यधिक अमूर्त तथा मुश्किल से नापी जाने वाली प्रघटनाओं जैसेकि मनोवृत्तियों, भावनाओं एवं इसी तरह अन्य का अध्ययन करती है। पद्धतियों के बीच का संबंधित अंतर है कि एक वह पद्धति जो प्रेक्षण किए जा सकने वाले व्यवहार का अध्ययन करती है और दूसरी प्रेक्षण न किए जा सकने वाले अर्थों, मूल्यों तथा अन्य व्याख्यात्मक चीज़ों का अध्ययन करती है।

पद्धतियों के वर्गीकरण का अन्य तरीका इनके बीच आँकड़ों के प्रकार के आधार पर अंतर करने का है। एक 'द्वितीयक' या पहले से उपलब्ध आँकड़ों (दस्तावेज़ों के रूप में या अन्य रिकार्डों तथा कलाकृतियों) पर निर्भर हैं दूसरी वह जो नए या 'प्राथमिक' आँकड़े बनाती हैं। अतएव ऐतिहासिक पद्धतियाँ परंपरागत रूप में भू-लेखागारों में पाई जाने वाली द्वितीयक सामग्री पर निर्भर है जबकि साक्षात्कार से प्रारंभिक आँकड़ों की जानकारी प्राप्त होती है। इसी तरह अन्य पद्धतियाँ भी हैं।

वर्गीकरण का एक अन्य तरीका 'व्यष्टि' तथा 'समष्टि' पद्धतियों को अलग करने का है। इनमें से पहली पद्धति में सामान्यतः एक अकेला अनुसंधानकर्ता होता है, जो छोटे तथा घनिष्ठ परिवेश में कार्य करता है। अतः साक्षात्कार तथा सहभागी प्रेक्षण को 'व्यष्टि' पद्धतियाँ माना जाता है। 'समष्टि' पद्धतियाँ वे हैं जो बड़े पैमाने वाले अनुसंधानों जिसमें अधिक संख्या में अन्वेषक तथा उत्तरदाता शामिल होते हैं, का समाधान कर सकती है। 'समष्टि' पद्धति का सबसे आम उदाहरण सर्वेक्षण अनुसंधान है यद्यपि कुछ ऐतिहासिक पद्धतियाँ भी समष्टि प्रघटनाओं का अध्ययन कर सकती हैं।

वर्गीकरण का ढंग चाहे जो हो, यह याद रखना आवश्यक है कि यह एक परंपरा का विषय है। विभिन्न प्रकार की पद्धतियों के बीच विभाजक रेखा को ज़्यादा तीक्ष्ण होने की आवश्यकता नहीं है। प्रायः एक पद्धति को दूसरी पद्धति में बदलना या किसी एक को दूसरी के साथ अनुपूरक की तरह इस्तेमाल करना संभव है।

सामान्यतया पद्धति का चयन अनुसंधान के प्रश्नों की प्रकृति, अनुसंधानकर्ता की प्राथमिकताओं तथा समय और/या संसाधनों के प्रतिबंधों के

आधार पर किया जाता है। समाजिक विज्ञान में वर्तमान प्रवृत्ति विभिन्न अनुकूल बिंदुओं से समान अनुसंधान समस्या पर बहुविध पद्धतियों का प्रयोग करना है। इसी को कभी-कभी 'त्रिभुजन' कहा जाता है, अर्थात किसी वस्तु को विभिन्न दिशाओं से दोहराना या उसको ठीक तरह से परिभाषित करना। इस तरीके से एक दूसरे की सहायता के लिए विभिन्न पद्धतियाँ प्रयोग की जा सकती हैं ताकि सिर्फ़ एक पद्धति के प्रयोग से प्राप्त परिणामों की तुलना में और अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकें।

चूँकि समाजशास्त्र की सुस्पष्ट पद्धतियाँ वही होती हैं जिनसे 'प्रारंभिक' आँकड़े प्राप्त करने में सहायता मिलती है, अतः यहाँ इन्हीं की चर्चा की गई है। यहाँ तक कि 'क्षेत्रीय कार्य' की श्रेणी पर आधारित पद्धतियों में भी हम आपको सबसे प्रसिद्ध पद्धति सर्वेक्षण, साक्षात्कार तथा सहभागी प्रेक्षण से परिचित कराएँगे।

सहभागी प्रेक्षण (अवलोकन)

समाजशास्त्र में विशेष रूप से सामाजिक मानवविज्ञान में लोकप्रिय सहभागी प्रेक्षण का आशय एक विशेष पद्धति से है जिसके द्वारा समाजशास्त्री उस समाज, संस्कृति तथा उन लोगों के बारे में सीखता है जिनका वह अध्ययन कर रहा होता है (अध्याय 1 में समाजशास्त्र तथा सामाजिक मानवविज्ञान पर की गई चर्चा का स्मरण करें)।

यह पद्धति अन्य पद्धतियों से कई प्रकार से अलग है। सर्वेक्षणों या साक्षात्कारों जैसी प्रारंभिक आँकड़ें एकत्र करने वाली अन्य पद्धतियों के विपरीत क्षेत्रीय कार्य में अनुसंधान के विषय के साथ लंबी अवधि की अंतःक्रिया शामिल होती है। सामान्यतः समाजशास्त्री या समाजिक मानवविज्ञानी कई महीने लगभग एक वर्ष या कभी-कभी इससे ज़्यादा भी उन लोगों के बीच उनकी तरह बनकर व्यतीत करते हैं जिनका उन्हें अध्ययन करना होता है। 'बाहरी' अर्थात वहाँ का निवासी न होने के कारण मानवविज्ञानी को अपने आपको मूल निवासियों की संस्कृति में उनकी भाषा सीखकर तथा उनके प्रतिदिन के जीवन में निकट से सहभागी बनकर उनमें ही मिलना पड़ता है ताकि समस्त स्पष्ट तथा अस्पष्ट ज्ञान तथा कौशल को प्राप्त किया जा सके जोकि 'अंदर के निवासियों' के पास होता है। यद्यपि समाजशास्त्री या मानवविज्ञानी की रुचि कुछ विशेष क्षेत्रों में होती है 'सहभागी प्रेक्षण' क्षेत्रीय कार्य का समग्र लक्ष्य समुदाय के 'जीने के संपूर्ण तरीके' सीखना होता है। वास्तव में यह एक बच्चे के उदाहरण जैसा है जिसमें समाजशास्त्री तथा मानवविज्ञानी से आशा की जाती है कि वह अपने अपनाए गए समुदायों के बारे में प्रत्येक वस्तु ठीक उसी प्रकार संपूर्ण तरीके से सीखे जैसेकि एक छोटा बच्चा संसार के बारे में सीखता है।

सहभागी प्रेक्षण को प्रायः 'क्षेत्रीय कार्य' कहा जाता है। यह शब्द मूलतः वनस्पतिशास्त्र, प्राणिविज्ञान, भू-विज्ञान आदि जैसे विशेष प्राकृतिक विज्ञानों की देन है। इन विषयों में, वैज्ञानिक केवल प्रयोगशाला में ही कार्य नहीं करते बल्कि उन्हें अपने विषयों (जैसेकि चट्टानों, कीटों या पौधों) के बारे में जानने के लिए 'क्षेत्र' में भी जाना पड़ता है।

3

सामाजिक मानवविज्ञान में क्षेत्रीय कार्य

एक कठोर वैज्ञानिक पद्धति के रूप में क्षेत्रीय कार्य ने मानवविज्ञान को सामाजिक विज्ञान के रूप में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आरंभिक मानवविज्ञानी आदिम संस्कृतियों में शौकिया पर उत्साही रुचि रखते थे। वे 'किताबी विद्वान' थे। जिन्होंने दूरस्थ समुदायों के बारे में (जिनकी उन्होंने कभी यात्रा नहीं की) यात्रियों, उपदेशकों, औपनिवेशिक प्रशासकों, सिपाहियों तथा उस स्थान पर गए अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखी गई रिपोर्टों तथा विवरणों से उपलब्ध सूचनाओं को इकट्ठा तथा सुव्यवस्थित किया। उदाहरणार्थ, जेम्स फ्रेज़र की प्रसिद्ध पुस्तक द *गोल्डन बॉग* जिसने अनेक आरंभिक मानवविज्ञानियों को प्रेरित किया था, पूरी तरह से ऐसे द्वितीय श्रेणी के विवरणों पर आधारित थी। इसी तरह एमिल दुर्खाइम का आदिम धर्म पर किया गया कार्य भी द्वितीय श्रेणी के विवरणों पर आधारित था। उन्नीसवीं सदी के अंत में तथा बीसवीं सदी के पहले दशक में बहुत से आरंभिक मानवविज्ञानियों ने जिनमें कुछ व्यक्ति पेशे से प्रकृति वैज्ञानिक थे, जनजातीय भाषाओं, प्रथाओं, अनुष्ठानों तथा आस्थाओं का व्यवस्थित ढंग से सर्वेक्षण आरंभ किया। दूसरी श्रेणी के विवरणों पर निर्भरता को अविश्वसनीय माना जाने लगा तथा स्वयं किए गए कार्यों से प्राप्त श्रेष्ठ परिणामों ने इस बढ़ते हुए पूर्वाग्रह को स्थापित होने में सहायता की (अगले पृष्ठ पर दिए गए बॉक्स को देखें)।

सन् 1920 से सहभागी प्रेक्षण या क्षेत्रीय कार्य को सामाजिक मानवविज्ञान के प्रशिक्षण और मुख्य पद्धति, जिसके द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है, का एक अनिवार्य हिस्सा माना जाने लगा। लगभग सभी प्रभावशाली विद्वानों ने अपने क्षेत्र में ऐसे क्षेत्रीय कार्य किए हैं। वास्तव में बहुत से समुदाय या भौगोलिक स्थान क्षेत्रीय कार्य के प्रतिष्ठित उदाहरणों से संबंधित होने के कारण विषय में लोकप्रिय बन गए।

वास्तव में सामाजिक मानवविज्ञानी क्षेत्रीय कार्य करते समय क्या करता हैं? सामान्यत: वह समुदाय, जिसका वह अध्ययन करता है, की जनगणना कर कार्य प्रारंभ करता है। इसमें समुदाय में रह रहे सभी लोगों के बारे में विस्तृत सूची, जिसमें उनके लिंग, आयु, वर्ग तथा परिवार जैसी सूचना भी है, बनाना शामिल है। इसके साथ गाँव या रहने की जगह का भौतिक रूप से नक्शा बनाने का प्रयास भी किया जा सकता है, जिसमें घरों तथा समाजिक तौर पर संबंधित अन्य जगहों की स्थिति भी शामिल होती है। अपने क्षेत्रीय कार्य की प्रारंभिक अवस्था में मानवविज्ञानियों द्वारा प्रयुक्त सबसे महत्त्वपूर्ण तकनीक है–समुदाय की वंशावली बनाना। यह जनगणना द्वारा प्राप्त सूचना पर आधारित हो सकती है परंतु इसका आगे विस्तार होता है क्योंकि इसके आधार पर प्रत्येक सदस्य का वंशवृक्ष बनाना तथा जहाँ तक संभव हो सके वंशवृक्ष का पीछे की तरफ़ विस्तार करना शामिल होता है। उदाहरण के लिए, किसी भी परिवार या घर के मुखिया से उसके रिश्तेदारों–उसकी अपनी पीढ़ी में भाइयों, बहनों तथा चचेरे भाई-बहनों

ब्रोनिस्लाव मैलिनोवस्की तथा क्षेत्रीय कार्य की 'खोज'

हालाँकि वह पहले व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने इस पद्धति का प्रयोग किया था–अन्य विद्वानों द्वारा विश्वभर में इसे विभिन्न रूपों में जाँचा जा चुका था–ब्रोनिस्लाव मैलिनोवस्की, पोलेंड के एक मानवविज्ञानी थे जो ब्रिटेन में बसे हुए थे। ऐसा व्यापक तौर पर माना जाता है कि उन्होंने क्षेत्रीय कार्य को सामाजिक मानवविज्ञान की एक विशेष पद्धति के रूप में स्थापित किया। सन् 1914 में यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू होने के समय वह ऑस्ट्रेलिया की यात्रा पर थे जोकि उस समय ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग था। क्योंकि युद्ध में पोलेंड जर्मनी के साथ था, इसे ब्रिटेन द्वारा शत्रु घोषित किया गया था तथा पोलेंड का नागरिक होने के कारण मैलिनोवस्की तकनीकी रूप से 'शत्रु देश का निवासी' बन गए। वास्तव में वह *लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स* में एक सम्मानित प्रोफ़ेसर थे तथा ब्रिटिश तथा ऑस्ट्रेलिया के सत्ताधारियों के साथ उसके बहुत अच्छे संबंध थे। परंतु तकनीकी रूप से 'शत्रु देश का निवासी' होने के कारण कानून के अनुसार उनका एक विशेष जगह में ही सीमित या 'नज़रबंद' रहना ज़रूरी था।

मैलिनोवस्की अपने मानववैज्ञानिक अनुसंधान के लिए ऑस्ट्रेलिया की अनेक जगहों तथा दक्षिणी प्रशांत महासागर के द्वीपों की यात्रा करना चाहते थे। अत: उन्होंने सत्ताधारियों से अनुरोध किया कि उनकी नज़रबंदी दक्षिणी प्रशांत के ट्रोब्रियांड द्वीपों में करने की अनुमति दी जाए जोकि ब्रिटिश–ऑस्ट्रेलिया के कब्ज़े में थे। इस पर ऑस्ट्रेलिया सरकार ने सहमति प्रदान कर दी तथा उनकी यात्रा के लिए वित्तपोषण भी दिया तथा मैलिनोवस्की ने ट्रोब्रियांड द्वीपों में डेढ़ वर्ष व्यतीत किया। वह वहाँ के मूल गाँवों में एक तंबू में रहें, स्थानीय भाषा सीखी तथा उनकी संस्कृति के बारे में सीखने के लिए वहाँ के 'मूल निवासियों' के साथ गहन अंत:क्रिया की। उन्होंने अपने प्रेक्षणों का सावधानीपूर्वक विस्तृत रिकार्ड रखा तथा दैनिक डायरी भी बनाई। बाद में उन्होंने इन क्षेत्रीय टिप्पणियों तथा डायरियों के आधार पर ट्रोब्रियांड संस्कृति पर किताबें लिखीं। ये पुस्तकें शीघ्र लोकप्रिय हो गईं तथा आज भी इन्हें क्लासिक्स माना जाता है।

उनके ट्रोब्रियांड अनुभव से पहले भी मैलिनोवस्की ने विश्वास व्यक्त किया था कि मानवविज्ञान का भविष्य मानवविज्ञान तथा मूल संस्कृति के बीच बिना किसी मध्यस्थ के सीधी अंत:क्रिया पर आधारित हैं। वह मानते थे कि यह विषय तब तक प्रतिभा संपन्न शौक की स्थिति से आगे नहीं बढ़ेगा जब तक कि इसके अभ्यासकर्ता भाषा को गहनता से सीखकर स्वयं व्यवस्थित ढंग से प्रेक्षण करने का कार्य नहीं करेंगे। यह प्रेक्षण अनुसंधान के विषय क्षेत्र में ही करना होगा अर्थात यह प्रेक्षण करने के लिए मानवविज्ञानी को इस उद्देश्य हेतु कस्बे या बाहर बुलाए गए मूल निवासियों के साक्षात्कार के स्थान पर स्थानीय लोगों के बीच रहना होगा तथा वहाँ के जीवन को देखना होगा जिस प्रकार वह घटित होता है। दुभाषिए के प्रयोग से भी बचना होगा। यह तभी संभव है जब मानवविज्ञानी मूल निवासियों से स्वयं सीधे बातचीत करें। तभी उनकी संस्कृति के बारे में सही तथा प्रामाणिक सूचना प्राप्त हो सकती है।।

लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में उनकी प्रभावी स्थिति तथा ट्रोब्रियांड में उनके कार्य की ख्याति से मैलिनोवस्की को मानवविज्ञान के विद्यार्थियों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण में क्षेत्रीय कार्य को संस्थापक रूप में इसका एक अनिवार्य हिस्सा बनाने के अभियान में सहायता प्राप्त हुई। इसने विषय को एक कठोर विज्ञान, जो विद्वत्तापूर्ण इज़्ज़त का हकदार है, की तरह स्वीकृति मिलने में सहायता की।

के बारे में; तत्पश्चात उसके माता-पिता की पीढ़ी में–उनके पिता, माता, उनके भाइयों, बहनों आदि के बारे में; इसके बाद परदादा-दादी तथा उनके भाइयों, बहनों के बारे में और आगे इसी तरह से पूछा जा सकता है। यह कार्य उतनी पीढ़ियों तक के लिए किया जा सकता है जितना व्यक्ति याद रख सकता है। किसी एक व्यक्ति से प्राप्त सूचना की जाँच अन्य संबंधियों से वही प्रश्न पूछकर की जा सकती है तथा पुष्टि होने के बाद एक विस्तृत वंशवृक्ष बनाया जा सकता है। यह अभ्यास सामाजिक मानवविज्ञानियों को समुदाय की नातेदारी व्यवस्था को समझने में सहायता करता है। साथ ही किसी व्यक्ति के जीवन में विभिन्न संबंधी किस प्रकार की भूमिका निभाते हैं तथा इन संबंधों को कैसे बनाए रखा जाता था, इसका पता चलता है।

एक वंशावली मानवविज्ञानी को समुदाय की संरचना के बारे में जानने में सहायता करती है तथा व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें लोगों से मिलने तथा समुदाय की जीवन शैली में घुलने-मिलने में सहायक होती है। इस आधार पर चलकर मानवविज्ञानी लगातार समुदाय की भाषा सीखता है। वह समुदाय के जीवन का प्रेक्षण करता है तथा एक विस्तृत नोट तैयार करता है जिसमें सामुदायिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों का उल्लेख होता है। मानवविज्ञानियों की रुचि विशेष रूप से त्योहारों, धार्मिक या अन्य सामूहिक घटनाओं, आजीविका के साधनों, पारिवारिक संबंधों, बच्चों के पालन-पोषण के साधनों जैसे प्रसंगों में होती है। इन संस्थाओं और व्यवहारों के बारे में जानने के लिए मानवविज्ञानी को उन वस्तुओं के बारे में अंतहीन प्रश्न पूछने पड़ते हैं जिन्हें समुदाय के सदस्य कोई महत्त्व नहीं देते। इस भावना के तहत मानवविज्ञानी को एक बच्चे की तरह होना चाहिए तथा हमेशा क्यों, क्या एवं अन्य प्रश्न पूछते रहना चाहिए। इसके लिए मानवविज्ञानी अधिकांश सूचना हेतु एक या दो व्यक्तियों पर निर्भर होता है। ऐसे व्यक्तियों को 'सूचनादाता' या 'मुख्य सूचनादाता' कहा जाता है। इनके लिए प्रारंभिक दिनों में 'मूल सूचनादाता' शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। सूचनादाता मानवविज्ञानी के लिए अध्यापक का काम करते हैं तथा मानवविज्ञानीय अनुसंधान की संपूर्ण प्रक्रिया में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता होते हैं। इसी तरह से क्षेत्रीय कार्य के दौरान मानवविज्ञानी द्वारा बनाए गए विस्तृत क्षेत्रीय नोट भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनको प्रतिदिन बिना किसी त्रुटि के लिखा जाना चाहिए

क्रियाकलाप-2

क्षेत्रीय कार्य के कुछ प्रसिद्ध उदाहरण निम्नलिखित हैं–अंडमान निकोबार द्वीपों पर रैडक्लिफ़–ब्राऊन; सूडान में न्यूर पर इवान्स प्रिचार्ड; संयुक्त राज्य अमेरिका में विभिन्न मूल अमेरिकन जनजातियों पर फ्रांज़ बोआस; समोआ पर मार्गरेट मीड, बाली पर क्लीफ़ोर्ड गीड्ज़ आदि।

संसार के नक्शे में इन स्थानों का पता लगाएँ। इन जगहों में क्या समान है? एक मानवविज्ञानी के लिए इन 'अनजानी' संस्कृतियों में रहना कैसा रहा होगा? उन्होंने क्या-क्या कठिनाइयाँ सहन की होंगी?

तथा ये एक दैनिक डायरी का रूप भी ले सकते हैं या इनके साथ एक दैनिक डायरी भी लिखी जा सकती है।

4

समाजशास्त्र में क्षेत्रीय कार्य

समाजशास्त्री जब क्षेत्रीय कार्य करते हैं तो सामान्यत: समान तकनीकों का उपयोग करते हैं। समाजशास्त्रीय क्षेत्रीय कार्य अपनी अंतर्वस्तु में इतना अलग नहीं होता और न ही क्षेत्रीय कार्य के दौरान किए गए कार्य में अलग होता है। परंतु इसके संदर्भ में, जहाँ यह किया जाता है और अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों या विषयों के वितरण को दिए गए महत्त्व के अनुसार अलग होता है। अत: एक समाजशास्त्री भी एक समुदाय में रहता है और उसके 'अंदर का निवासी' बनने का प्रयास करता है। तथापि एक मानवविज्ञानी के विपरीत, जो क्षेत्रीय कार्य करने के लिए दूर-दराज़ के जनजातीय समुदाय में चला जाता है, समाजशास्त्री अपना क्षेत्रीय कार्य सभी प्रकार के समाजों के समुदायों में करते हैं। साथ ही समाजशास्त्रीय क्षेत्रीय कार्य में 'क्षेत्र में' रहना आवश्यक नहीं है यद्यपि उसे अपना अधिकांश समय समुदाय के सदस्यों के साथ बिताना पड़ता है।

उदाहरण के लिए, अमेरिकी समाजशास्त्री विलियम फोटे वाइटे ने अपना क्षेत्रीय कार्य एक बड़े शहर में इटैलियन-अमेरिकन गंदी बस्ती की गली के सदस्यों के 'गैंग' के बीच किया तथा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *स्ट्रीट कार्नर सोसायटी* लिखी। वह इस क्षेत्र में लगभग साढ़े तीन वर्ष तक 'घूमते-फिरते' रहे तथा अपना समय गैंग

समाजशास्त्र में क्षेत्रीय कार्य – कुछ कठिनाइयाँ

संसार के दूर-दराज़ के इलाके में आदिम जनजाति के बारे में अध्ययन करने वाले मानवविज्ञानी की तुलना में आधुनिक अमेरिकी समुदाय के विद्यार्थी को विभिन्न विशिष्ट समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहले वह साक्षर लोगों के साथ काम कर रहा होता है। यह निश्चित है कि इनमें से कुछ और शायद अनेक लोग उसकी अनुसंधान रिपोर्ट को पढ़ेंगे। जैसाकि मैंने किया है यदि वह भी उस ज़िले का नाम, जहाँ उसने वास्तव में अध्ययन किया है बदल दे तो अनेक बाहरी व्यक्ति यह पता नहीं लगा पाएँगे कि वास्तव में यह अध्ययन कहाँ पर किया गया है... उस ज़िले के व्यक्ति वास्तव में जानते हैं कि यह उनके बारे में है तथा नाम बदलने के बावजूद भी उनसे व्यक्तियों की पहचान छिपाई नहीं जा सकती। वे अनुसंधानकर्ता को जानते है तथा वह किन लोगों के साथ जुड़ा हुआ था यह भी जानते हैं तथा यह भी पता है कि विभिन्न समूहों में कौन-कौन व्यक्ति थे और इसमें त्रुटि की संभावना बहुत कम है।

ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ जाता है। वह अवश्य चाहेगा कि उसकी पुस्तक से उस ज़िले के लोगों को कुछ सहायता प्राप्त हो। कम से कम वह अवश्य चाहेगा कि इससे किसी भी प्रकार की हानि की न्यूनतम आशंका हो। वह इस संभावना को पूर्ण रूप से जानता है कि ऐसा होने से इस पुस्तक के प्रकाशन से कुछ व्यक्तियों को कठिनाइयाँ हो सकती हैं।

– *विलियम फोटे वाइटे, स्ट्रीट कार्नर सोसायटी*, पेज 342

या समूह के सदस्यों के बीच बिताया, जिनमें से अधिकांश अत्यंत गरीब बेरोज़गार युवा थे, यह प्रवासियों के समुदाय की अमेरिका में जन्मी पहली पीढ़ी थी। हालाँकि समाजशास्त्रीय क्षेत्रीय कार्य का यह उदारहण मानवविज्ञानी क्षेत्रीय कार्य के काफ़ी निकट है फिर भी इसमें महत्त्वपूर्ण अंतर है। (पिछले पृष्ठ के बॉक्स को देखें)। समाजशास्त्रीय क्षेत्रीय कार्य को सिर्फ़ इस प्रकार होने की आवश्यकता नहीं हैं–यह अलग रूप में भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जैसाकि दूसरे अमेरिकन समाजशास्त्री मिशेल बुरावो के कार्य में किया गया है। उन्होनें शिकागो कारखाने में अनेक महीनों तक कारीगर के रूप में कार्य किया तथा कामगारों के दृष्टिकोण से कार्य के अनुभव के बारे में लिखा।

भारतीय समाजशास्त्र में जिस तरह ग्रामीण अध्ययनों में क्षेत्रीय कार्य पद्धतियों का प्रयोग किया गया, वह एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। सन् 1950 में अनेक भारतीय तथा विदेशी समाजशास्त्री तथा मानवविज्ञानी गाँवों के जीवन तथा समाज पर कार्य करने लगे। गाँवों ने जनजातीय समुदायों, जिनका अध्ययन आरंभिक मानवविज्ञानियों द्वारा किया गया था की भूमिका निभाई। यह भी एक 'सीमित समुदाय' था तथा इतना छोटा था कि एक अकेले व्यक्ति द्वारा इसका अध्ययन किया जा सकता था। अर्थात समाजशास्त्री गाँव में लगभग प्रत्येक को जान सकता था तथा वहाँ के जीवन का पता लगा सकता था। तथापि मानवविज्ञान का सरोकार अधिकतर आदिम समुदायों से होने के कारण उपनिवेशवादी भारत में राष्ट्रवादियों में यह लोकप्रिय नहीं था। अनेक शिक्षित भारतीयों का मानना था कि मानवविज्ञान जैसे विषयों में औपनिवेशिक पूर्वाग्रह शामिल हैं क्योंकि वे औपनिवेशिक समाजों के विकासात्मक या सकारात्मक पहलुओं के स्थान पर उनके गैर-आधुनिक पक्षों को उजागर करते थे। इसलिए समाजशास्त्री के लिए केवल जनजातियों का अध्ययन करने के स्थान पर

क्रियाकलाप-3

यदि आप गाँव में रहते हैं, तो अपने गाँव के बारे में ऐसे व्यक्ति को बताने की कोशिश करें जो वहाँ कभी न गया हो। गाँव में आपके जीवन के वे कौन से मुख्य लक्षण होंगे जिन्हें आप महत्त्व देना चाहेंगे? आपने फ़िल्मों या टेलीविजन पर दिखाए गए गाँवों को भी अवश्य देखा होगा। आप इन गाँवों के बारे में क्या सोचते हैं तथा ये आपके गाँव से किस प्रकार भिन्न हैं? फ़िल्म या टेलीविजन पर दिखाए गए शहरों के बारे में भी सोचिए–क्या आप इनमें रहना पसंद करेंगे? अपने उत्तर के पक्ष में कारण बताएँ।

यदि आप किसी कस्बे या शहर में रहते हैं, तो अपने आस-पड़ोस के बारे में ऐसे व्यक्ति को बताएँ जो कभी वहाँ नहीं गया हो। आपके पास-पड़ोस में आपके जीवन की मुख्य विशेषताएँ कौन सी हैं जिन्हें आप महत्त्व देना चाहेंगे? फ़िल्म या टेलीविजन में दिखाए गए शहरों के पड़ोस से आपका पड़ोस किस प्रकार से भिन्न (या सदृश्य) है? आपने फ़िल्म या टेलीविजन पर दिखाए गए गाँव भी अवश्य देखे होंगे–क्या आप इनमें रहना पसंद करेंगे? अपने उत्तर के पक्ष में कारण बताएँ।

गाँवों तथा गाँववालों का अध्ययन करना ज़्यादा स्वीकार्य तथा महत्त्वपूर्ण था। आरंभिक मानवविज्ञान तथा उपनिवेशवाद के बीच संबंधों पर भी प्रश्न पूछे जाने लगे थे। वास्तव में मैलिनोवस्की, इवान्स प्रिचार्ड तथा अनेक अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए क्लासिक क्षेत्रीय कार्य इस तथ्य के कारण संभव हो पाए थे कि वे लोग एवं स्थान जहाँ क्षेत्रीय कार्य किया गया था,

गाँवों का अध्ययन करने की विभिन्न शैलियाँ

सन् 1950 तथा 1960 के दौरान गाँवों का अध्ययन करना भारतीय समाजशास्त्र का मुख्य पेशा बन गया था। परंतु इससे काफ़ी समय पहले एक मिशनरी दंपति विलियम तथा चारलोटे वाइज़र ने, जो उत्तर प्रदेश के एक गाँव में पाँच वर्ष तक रहे, एक प्रसिद्ध ग्रामीण अध्ययन *बिहाईंड मॅड वॉलूस* लिखा था। वाइज़र की यह पुस्तक उनके मिशनरी कार्य का एक उप-उत्पाद थी। हालाँकि विलियम वाइज़र एक समाजशास्त्री के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त थे तथा इससे पहले भी जजमानी व्यवस्था पर एक पुस्तक लिख चुके थे।

सन् 1950 में किए गए ग्रामीण अध्ययन विभिन्न संदर्भ में जन्मे थे तथा अनेक विभिन्न तरीकों से किए गए थे। क्लासिकी सामाजिक मानवविज्ञानी शैली मुख्य थी तथा इसके साथ 'जनजाति' या 'सीमित समुदाय का स्थान गाँव ने ले लिया था। इस तरह के क्षेत्रीय कार्य का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण शायद एम. एन. श्रीवास्तव की प्रसिद्ध पुस्तक *रिमेम्बरड विलेज* में दिया गया है। श्रीनिवास ने मैसूर के निकट एक गाँव में एक वर्ष बिताया जिसे उन्होंने रामपुरा नाम दिया। इस पुस्तक का शीर्षक यह बताता है कि श्रीनिवास द्वारा तैयार किए गए क्षेत्रीय नोट्स आग में जल गए तथा उन्होंने अपनी याद्दाश्त के आधार पर गाँव के बारे में लिखना पड़ा था।

एक अन्य प्रसिद्ध ग्रामीण अध्ययन सन् 1950 में एस.सी. दुबे द्वारा लिखित *इंडियन विलेज* था। उस्मानिया विश्वविद्यालय में एवं सामाजिक मानवविज्ञानी के रूप में दुबे एक बहु-विषयक दल के सदस्य थे, जिसमें कृषि विज्ञान, अर्थशास्त्र, पशु विज्ञान तथा औषध विज्ञान के विभाग शमिल थे। इन्होंने सिकंदराबाद के निकट समीरपेट नामक एक गाँव का अध्ययन किया। इस बड़ी सामूहिक परियोजना का उद्देश्य सिर्फ़ गाँव का अध्ययन करना ही नहीं बल्कि उसका विकास करना भी था। दरअसल इसका उद्देश्य समीरपेट को एक ऐसी प्रयोगशाला बनाना था जहाँ ग्रामीण विकास कार्यक्रम बनाने हेतु प्रयोग किए जा सकते थे।

ग्रामीण अध्ययन की एक अन्य शैली सन् 1950 में किए गए *कोरनेल विलेज स्टडी प्रोजेक्ट* में दिखाई देती है। कोरनेल विश्वविद्यालय द्वारा प्रारंभ की गई परियोजना में अमेरिकन मानवविज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों तथा भाषाविदों का एक समूह था जिन्होंने भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों का अध्ययन किया। ग्रामीण समाज तथा संस्कृति का बहु-विषयक अध्ययन करने की यह अति महत्त्वपूर्ण शैक्षिक परियोजना थी। इस परियोजना में कुछ भारतीय विद्वान भी शामिल थे, जिन्होंने कई अमेरिकनों की प्रशिक्षण में सहायता की तथा जो बाद में भारतीय समाज के प्रसिद्ध विद्वान बने।

औपनिवेशिक साम्राज्यों का हिस्सा थे तथा यह उन देशों द्वारा शासित थे जहाँ से पश्चिमी मानवविज्ञानी आए थे।

तथापि पद्धतिशास्त्रीय कारणों की बजाए गाँव पर किए गए अध्ययन इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि उन्होंने भारतीय समाजशास्त्र को एक ऐसा विषय उपलब्ध कराया जो नए स्वतंत्र भारत में अत्यंत रुचिकर था। सरकार की रुचि विकासशील ग्रामीण भारत में थी। राष्ट्रीय आंदोलन, विशेष रूप से महात्मा गांधी 'ग्राम उत्थान' कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। यहाँ तक कि शहरी शिक्षित भारतीय भी ग्रामीण जीवन में अत्यधिक रुचि ले रहे थे क्योंकि इनमें से अधिकतर के कुछ पारिवारिक तथा वर्तमान ऐतिहासिक संबंध गाँवों से थे। इससे बढ़कर गाँव ऐसी जगह थी जहाँ अधिकांश भारतीय रहते थे (और अभी भी रहते हैं)। इन्हीं कारणों से गाँवों के अध्ययन भारतीय समाजशास्त्र का अत्यंत महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गए थे तथा ग्रामीण समाज का अध्ययन करने के लिए क्षेत्रीय कार्य पद्धतियाँ अत्यंत अनुकूल थीं।

सहभागी प्रेक्षण की कुछ सीमाएँ

आप पहले ही देख चुके हैं कि सहभागी प्रेक्षण क्या कर सकता है। इसकी मुख्य ताकत यह है कि यह 'अंदर के' व्यक्ति के दृष्टिकोण से जीवन की महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत तसवीर उपलब्ध कराता है। यह आंतरिक दृष्टिकोण ही है जो क्षेत्रीय कार्य करने के लिए दिए समय तथा प्रयास के अत्यधिक निवेश के बदले में प्राप्त होता है। अधिकांश अन्य अनुसंधान पद्धतियाँ काफ़ी लंबे समय के उपरांत 'क्षेत्र' का विस्तृत ज्ञान होने का दावा नहीं कर सकतीं, क्योंकि वे सामान्यतः संक्षिप्त तथा जल्दी में दिए गए क्षेत्रीय दौरे पर आधारित होती हैं। क्षेत्रीय कार्य में प्रारंभिक प्रभावों में सुधार करने की गुंजाइश होती है जोकि प्रायः त्रुटिपूर्ण या पूर्वाग्रहित हो सकते हैं। यह अनुसंधानकर्ता को रुचि के विषय में हुए परिवर्तनों को जानने तथा विभिन्न परिस्थितियों या संदर्भों के प्रभाव जानने में भी सहायता करता है। उदाहरणार्थ; किसी अच्छी फसल के साल में और बुरी फसल के साल में सामाजिक संरचना या संस्कृति के विभिन्न पक्षों को जाना जा सकता है, रोज़गार या बेरोज़गार व्यक्तियों का व्यवहार अलग-अलग हो सकता है आदि। क्योंकि सहभागी प्रेक्षक क्षेत्र में 'पूरा समय' व्यतीत करता है, इसलिए उन अनेक त्रुटियों या पूर्वाग्रहों से बच सकता है जिनसे सर्वेक्षणों, प्रश्नावलियों या अल्पकालीन प्रेक्षणों के द्वारा नहीं बचा जा सकता।

परंतु सभी अनुसंधान पद्धतियों की तरह क्षेत्रीय कार्य की भी कुछ कमज़ोरियाँ हैं अन्यथा सभी समाज-विज्ञानी इसी एक पद्धति का प्रयोग कर रहे होते।

अपनी प्रकृति के कारण क्षेत्रीय कार्य में लंबे समय तक चलने वाला तथा किसी एक अकेले अनुसंधानकर्ता द्वारा किया जाने वाला गहन अनुसंधान निहित होता है। अतः यह विश्व के एक छोटे से भाग को ही अनुसंधान में शामिल कर पाता है। सामान्यतया यह एक अकेला गाँव या छोटा समुदाय होता है। हम कभी भी निश्चित नहीं कर सकते कि मानवविज्ञानी या

समाजशास्त्री द्वारा क्षेत्रीय कार्य के दौरान किए गए प्रेक्षण बड़े समुदाय (अर्थात अन्य गाँवों, क्षेत्रों या देश में) में भी अधिक रूप में समान होंगे या फिर ऐसा अपवाद स्वरूप होता है। शायद यह क्षेत्रीय कार्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।

क्षेत्रीय कार्य पद्धति की एक अन्य महत्त्वपूर्ण सीमा यह होती है कि हमें यह पता नहीं होता कि यह मानवविज्ञानी की आवाज़ है या फिर उन लोगों की जिनके बारे में अध्ययन किया गया है। वास्तव में इसका उद्देश्य उन लोगों के मतों का ही प्रतिनिधित्व माना जाता है जिनका अध्ययन किया गया है, परंतु इसकी सदैव संभावना रहती है कि मानवविज्ञानी द्वारा चेतन या अवचेतन मन से उसके नोट्स में लिखी गई किन बातों का चयन किया गया है तथा वह पाठकों के सामने इसे अपनी पुस्तकों या निबंधों में कैसे प्रस्तुत करता है। क्योंकि हमारे पास मानवविज्ञानी के कथन के अतिरिक्त कोई अन्य रूप उपलब्ध नहीं होता, अतः इसमें सदैव त्रुटि या पूर्वाग्रह की संभावना बनी रहती है। यद्यपि यह जोखिम अधिकांश अनुसंधान पद्धतियों में विद्यमान रहता है।

सामान्यतया क्षेत्रीय कार्य पद्धतियों की आलोचना एक पक्षीय संबंधों के कारण भी की जाती है जिन पर वे आधारित होती हैं। मानवविज्ञानी समाजशास्त्री प्रश्न पूछते हैं और उत्तर प्रस्तुत करते हैं तथा 'लोगों के लिए' बोलते हैं। इसके विरोध में कुछ विद्वानों ने अधिक 'संवादीय' प्रारूप बनाने का सुझाव दिया है—अर्थात क्षेत्रीय कार्य के परिणामों के प्रस्तुतीकरण के तरीके, जिनमें उत्तरदाता तथा लोग प्रत्यक्ष रूप से शामिल हो सकते हैं। ठोस शब्दों में, इसमें विद्वान व्यक्ति के कार्य का समुदाय की भाषा में अनुवाद तथा इस पर उनकी राय और उनके उत्तरों को रिकार्ड करना शामिल है। ज्यों-ज्यों अनुसंधानकर्ता तथा जिन व्यक्तियों पर अनुसंधान किया जाता है, उनके बीच की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दूरी या अंतर कम होता है, त्यों-त्यों इस बात की संभावना बढ़ती जाती है कि विद्वानों के कथनों पर लोगों द्वारा प्रश्न किए जाएँगे, इन्हें मान लिया जाएगा तथा लोगों द्वारा इन्हें स्वयं ठीक कर लिया जाएगा। इससे निश्चित रूप में समाजशास्त्रीय अनुसंधान ज़्यादा विवादास्पद तथा अधिक कठिन हो जाएगा परंतु लंबे समय के लिए यह एक अच्छी बात ही हो सकती है क्योंकि इससे समाजिक विज्ञान को आगे ले जाने में तथा इसे और अधिक जनतंत्रीय बनाने में सहायता मिलेगी अतएव अधिक से अधिक लोगों को 'ज्ञान' की रचना करने तथा इसमें आलोचात्मक दृष्टि से भाग लेने में सहायता मिलेगी।

सर्वेक्षण

शायद सर्वेक्षण क्षेत्रीय कार्य के लिए अब तक ज्ञात सबसे अच्छी समाजशास्त्रीय पद्धति है जोकि अब आधुनिक सार्वजनिक जीवन का इस तरह से एक हिस्सा बन गई है कि यह एक सामान्य बात हो गई है। आज इसका विश्वभर में सभी संदर्भों में प्रयोग किया जा रहा है तथा ये संदर्भ समाजशास्त्र के सरोकारों से बाहर चले गए हैं। भारत में भी हमने देखा है कि सर्वेक्षणों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के गैर-शैक्षिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है जिनमें चुनाव परिणामों का पूर्वानुमान

लगाना, उत्पादों को बेचने के लिए विपणन नीतियाँ बनाना तथा विषयों की व्यापक विभिन्नताओं के बारे में लोकप्रियता का पता लगाना शामिल है।

जैसाकि स्वयं शब्द से स्पष्ट है, सर्वेक्षण में संपूर्ण तथ्यों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। यह किसी विषय पर सावधानीपूर्वक चयन किए गए लोगों के प्रतिनिधि समुच्चय से प्राप्त सूचना का व्यापक या विस्तृत दृष्टिकोण होता है। ऐसे लोगों को प्राय: 'उत्तरदाता' कहा जाता है। ये अनुसंधानकर्ता द्वारा उनसे पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं। सर्वेक्षण अनुसंधान सामान्यतया विस्तृत दल द्वारा किया जाता है जिसमें अध्ययन की योजना बनाने वाले तथा रूपरेखा तैयार करने वाले (अनुसंधानकर्ता) तथा उनके सहयोगी और सहायक (जिन्हें 'अन्वेषक' या 'अनुसंधान सहायक' कहा जाता है) शामिल होते हैं। सर्वेक्षण के प्रश्न विभिन्न प्रकार से पूछे जा सकते हैं तथा इनके उत्तर भी विभिन्न प्रकार से दिए जा सकते हैं। अकसर अन्वेषक द्वारा व्यक्तिगत दौरे के दौरान इन्हें मौखिक रूप में पूछा जाता है तथा कभी-कभी दूरभाष द्वारा पूछा जाता है। अन्वेषक द्वारा लाई गई या डाक द्वारा प्राप्त 'प्रश्नावलियों' में भी उत्तर लिखे जा सकते हैं। कंप्यूटरों तथा दूरसंचार तकनीक के बढ़ते

जनगणना तथा राष्ट्रीय प्रतिदर्श (निदर्शन) सर्वेक्षण संगठन

प्रत्येक दस वर्ष में किया जाने वाला भारत का जनसंख्या सर्वेक्षण विश्व में इस प्रकार का सबसे बड़ा सर्वेक्षण है। (हमसे ज़्यादा जनसंख्या वाला देश है चीन जहाँ ऐसी नियमित जनगणना नहीं होती)। इसमें लाखों अन्वेषक तथा अत्यधिक संख्या में संगठनों के समावेश के अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा बड़ी धनराशि व्यय की जाती है। यद्यपि बदले में हमें भारत में रहने वाले प्रत्येक घर तथा भारत में रहने वाले एक अरब से ज़्यादा लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति जो इसमें शामिल होते हैं का वास्तविक सर्वेक्षण प्राप्त होता है। स्पष्ट रूप से ऐसे विस्तृत सर्वेक्षण बार-बार नहीं किए जा सकते। दरअसल अनेक विकसित देश अब पूर्ण जनगणना नहीं कराते। इसके स्थान पर वे अपनी जनसंख्या संबंधी आँकड़ों के लिए प्रतिदर्श सर्वेक्षण पर आश्रित हैं। क्योंकि ऐसे सर्वेक्षण काफ़ी हद तक सही पाए गए हैं। भारत में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एन.एस.एस.ओ.) गरीबी तथा बेरोज़गारी के स्तर का (तथा अन्य विषयों) हर वर्ष प्रतिदर्श सर्वेक्षण करता है। प्रत्येक पाँच वर्ष में यह एक विस्तृत सर्वेक्षण करता है जिसमें लगभग 1.2 लाख घर शामिल होते हैं जिससे पूरे भारत में 6 लाख से ज़्यादा व्यक्ति इसमें शामिल होते हैं। वास्तव में इसे विस्तृत प्रतिदर्श माना जाता है तथा एन.एस.एस.ओ. द्वारा किए गए सर्वेक्षण संसार में नियमित रूप से किए गए सबसे बड़े सर्वेक्षणों में गिने जाते हैं। क्योंकि भारत की कुल आबादी 100 करोड़ से अधिक है अत: आप देख सकते हैं कि एन.एस.एस.ओ. के पंचवर्षीय सर्वेक्षणों में शामिल प्रतिदर्श भारत की जनसंख्या के लगभग 0.06 प्रतिशत मात्र, एक प्रतिशत के बीसवें भाग से थोड़ा ज़्यादा है। चूँकि इसका चयन वैज्ञानिक तौर पर संपूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने के लिए होता है, इतने छोटे अनुपात पर आधारित होने के बावजूद एन.एस.एस.ओ. प्रतिदर्श जनसंख्या की विशेषताओं का अनुमान कर सकता है।

प्रयोग के फलस्वरूप आज इलैक्ट्रॉनिक रूप में सर्वेक्षण करना भी संभव हो गया है। इस प्रारूप में उत्तरदाता प्रश्नों को ई-मेल, इंटरनेट या इसी प्रकार के इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा प्राप्त करता है तथा इसके द्वारा ही उत्तर देता है।

सामाजिक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में सर्वेक्षण का मुख्य लाभ यह है कि इसके द्वारा जनसंख्या के केवल छोटे से भाग पर सर्वेक्षण करके इसके परिणामों को बड़ी जनसंख्या पर लागू किया जा सकता है। अतः सीमित समय, प्रयास तथा धन के निवेश द्वारा सर्वेक्षण बड़ी जनसंख्याओं के अध्ययन को संभव बनाता है। यही कारण है कि समाजिक विज्ञानों तथा अन्य क्षेत्रों में यह अत्यधिक लोकप्रिय पद्धति है।

सांख्यिकी की शाखा, जिसे प्रतिदर्श सिद्धांत कहा जाता है, की खोजों का लाभ उठाते हुए प्रतिदर्श सर्वेक्षण चयन के मामले में सावधान होने के बावजूद परिणामों का सामान्यीकरण कर सकता है। इस 'सरल उपाय' का महत्त्वपूर्ण कारण प्रतिदर्श का प्रतिनिधित्व है। हम एक दी गई जनसंख्या में से प्रतिनिधि प्रतिदर्श का चयन कैसे करेंगे? व्यापक रूप में प्रतिदर्श की चयन प्रक्रिया दो मुख्य सिद्धांतों पर आधारित है।

पहला सिद्धांत यह है कि जनसंख्या में सभी महत्त्वपूर्ण उपसमूहों को पहचाना जाए तथा प्रतिदर्श में उन्हें प्रतिनिधित्व दिया जाए। अधिकतर बड़ी जनसंख्याएँ एक समान नहीं होती, उनमें भी स्पष्ट उप-श्रेणियाँ होती हैं। इसे स्तरीकरण कहा जाता है। (नोट करें कि स्तरीकरण की यह सांख्यिकीय धारणा है जो स्तरीकरण की समाजशास्त्रीय संकल्पना से अलग है जिसका आपने अध्याय 4 में अध्ययन किया है)। उदाहरणार्थ; जब भारत की जनसंख्या के बारे में बात करते हैं तो हमें इस बात को ध्यान रखना होगा कि यह जनसंख्या शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बँटी हुई है जोकि एक दूसरे से काफ़ी हद तक अलग है। किसी भी एक राज्य की ग्रामीण जनसंख्या पर विचार करते समय हमें इस तथ्य का ध्यान रखना होगा कि यह जनसंख्या विभिन्न आकार वाले गाँवों में रहती है। इसी तरह से किसी एक गाँव की जनसंख्या भी वर्ग, जाति, लिंग, आयु, धर्म या अन्य मानदंडों के आधार पर स्तरीकृत हो सकती है। संक्षिप्त में स्तरीकरण की धारणा हमें बताती है कि प्रतिदर्श का प्रतिनिधित्व दी गई जनसंख्या के सभी संबद्ध स्तरों की विशेषताओं को दर्शाने की सक्षमता पर निर्भर है। किस प्रकार के प्रतिदर्शों को प्रासंगिक माना जाए यह अनुसंधान के अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्यों पर निर्भर है। उदाहरणार्थ; धर्म के प्रति मनोवृत्तियों के बारे में अध्ययन करते समय यह महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि सभी धर्मों के सदस्यों को शामिल किया जाए। मज़दूर संघों के प्रति मनोवृत्तियों पर अनुसंधान करते समय कामगारों, प्रबंधकों तथा उद्योगपतियों को शामिल करना चाहिए।

प्रतिदर्श चयन का दूसरा सिद्धांत है वास्तविक इकाई, अर्थात व्यक्ति या गाँव या घर का चयन पूर्णतया अवसर आधारित होना चाहिए। इसे यादृच्छीकरण कहा जाता है जोकि स्वयं संभाविता की संकल्पना पर आधारित है। आपने अपने गणित पाठ्यक्रम में संभाविता के बारे में पढ़ा होगा। संभाविता का आशय घटना के घटित होने

के अवसरों (या विषमताओं) से है। उदाहरण के लिए, जब हम सिक्का उछालते हैं तो यह या तो चित की ओर पड़ता है या फिर पट की ओर। सामान्य सिक्कों में चित या पट आने का अवसर या संभाविता लगभग एक समान है अर्थात प्रत्येक का 50 प्रतिशत होता है। वास्तव में जब आप सिक्का उछालते हैं तो दोनों में से कौन सी घटना होती है अर्थात चित आता है या पट, यह पूरी तरह से अवसर पर निर्भर करता है और किसी बात पर नहीं। इस प्रकार के अवसरों को यादृच्छिक अवसर कहा जाता है।

हम एक प्रतिदर्श को चुनने में समान विचार का उपयोग करते हैं। हम सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं कि प्रतिदर्श में चयन किए गए व्यक्ति या घर या गाँव पूर्णतः अवसर द्वारा चयनित हों, किसी अन्य तरह से नहीं। अतः प्रतिदर्श में चयन होना किस्मत की बात है, जैसे कि लॉटरी जीतना। यह तभी हो सकता है जब यह सच हो कि प्रतिदर्श एक प्रतिनिधित्व प्रतिदर्श होगा। यदि कोई सर्वेक्षण दल अपने प्रतिदर्श में केवल उन्हीं गाँवों का चयन करता है जो मुख्य सड़क के निकट हों तो यह प्रतिदर्श यादृच्छिक या संयोगवश न होकर पूर्वाग्रहित होंगे। इसी तरह से यदि हम अधिकतर मध्यमवर्ग के घरों का या अपने जानकार घरों का चयन करते हैं तो प्रतिदर्श पुनः पूर्वाग्रहित होंगे। मुख्य बिंदु यह है कि जनसंख्या से संबंधित स्तरों का पता लगाने के बाद प्रतिदर्श घरों या उत्तरदाताओं का वास्तविक चयन पूर्णतया संयोग के आधार पर होना चाहिए। इसे विभिन्न तरीकों से सुनिश्चित किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इनमें सामान्य रूप से लॉटरी निकालना, पाँसे फेंकना, इस उद्देश्य हेतु विशेष रूप से बनाई गई प्रतिदर्श नंबर प्लेटों का प्रयोग तथा हाल ही में गणकों या संगणकों द्वारा बनाई गई प्रतिदर्श संख्याएँ शामिल हैं।

एक प्रतिदर्श सर्वेक्षण का चयन कैसे किया जाता है इसे जानने के लिए आइए हम एक ठोस उदाहरण लें। मान लीजिए हम उस परिकल्पना की जाँच करना चाहते हैं जिसमें यह कहा गया है कि छोटे, आपस में अधिक घनिष्ठता वाले समुदाय बड़े, अधिक अवैयिक्तक समुदायों की तुलना में ज़्यादा अंतःसामुदायिक समन्वय की उत्पत्ति करते हैं। सरलता से समझने के लिए आइए मान लेते हैं कि हम भारत के किसी एक राज्य के ग्रामीण क्षेत्र में रुचि रखते हैं। प्रतिदर्श चयन करने की सरलतम संभावित प्रक्रिया राज्य के सभी गाँवों की उनकी जनसंख्या के साथ सूची बनाने से प्रारंभ होगी (यह सूची जनगणना आँकड़ों से भी प्राप्त की जा सकती है)। तत्पश्चात् हमें छोटे तथा बड़े गाँवों के मानदंडों को परिभाषित करना होगा। गाँवों की मूल सूची से अब हमें सभी मध्यम गाँवों अर्थात जो न तो छोटे हैं और न ही बड़े हैं, उनको हटाना होगा। अब हमारे पास गाँव के आकार के अनुसार एक संशोधित सूची है। हमारे अनुसंधान संबंधी प्रश्नों के अनुसार हम प्रत्येक स्तर अर्थात छोटे तथा बड़े गाँवों को समान महत्त्व देना चाहते हैं, अतः हमने प्रत्येक स्तर से 10 गाँवों को चुनने का निर्णय लिया। इसके लिए हम छोटे तथा बड़े गाँवों की सूची

को क्रम प्रदान करेंगे तथा प्रत्येक सूची से लॉटरी द्वारा दस-दस गाँवों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा करेंगे। अब हमारे पास राज्य के 10 छोटे तथा 10 बड़े गाँवों वाले प्रतिदर्श हैं तथा हम इन गाँवों का अध्ययन यह जानने के लिए प्रारंभ कर सकते हैं कि हमारी प्रारंभिक परिकल्पना सही थी या नहीं।

वास्तव में यह एक अत्यधिक सरल रूपरेखा है। वास्तविक अनुसंधान अध्ययनों में सामान्यतया अधिक जटिल रूपरेखा होती है जिसमें प्रतिदर्श चयन प्रक्रिया अनेक चरणों में विभाजित होती है तथा इसमें अनेक स्तर शमिल होते है। परंतु मूल सिद्धांत समान रहता है–एक लघु प्रतिदर्श का सावधानीपूर्वक चयन किया जाए ताकि यह पूरी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व कर सके। तत्पश्चात प्रतिदर्श का अध्ययन किया जाता है और इससे प्राप्त परिणामों का सामान्यीकरण कर इसे संपूर्ण जनसंख्या पर लागू किया जाता है। वैज्ञानिक ढंग से चयन किए गए प्रतिदर्श की सांख्यिकीय विशेषताएँ सुनिश्चित करती हैं कि प्रतिदर्श की

क्रियाकलाप-4

अपने समूह में उन सर्वेक्षणों के बारे में चर्चा कीजिए जिनके बारे में आप जानते हैं। ये चुनाव सर्वेक्षण, या समाचार पत्रों या टेलीविजन माध्यमों द्वारा किए गए अन्य लघु सर्वेक्षण भी हो सकते हैं। जब सर्वेक्षण के परिणाम घोषित किए गए तो क्या सीमांत त्रुटि के बारे में भी बताया गया था? क्या यह बताया गया था कि सर्वेक्षण का आकार क्या है तथा इनका चयन कैसे किया गया था? जहाँ अनुसंधान पद्धतियों के ये पक्ष साफ़ तौर पर न दिए गए हों वहाँ आपको इन सर्वेक्षणों के बारे में सवाल करना चाहिए क्योंकि इनके बिना निष्कर्षों का मूल्यांकन करना संभव नहीं है। सर्वेक्षण पद्धतियों का प्रचलित माध्यमों में प्राय: दुरुपयोग किया जाता है। पूर्वाग्रहित तथा अप्रतिनिधि प्रतिदर्श के आधार पर बड़े-बड़े दावे किए जाते हैं। आप इस परिप्रेक्ष्य से उन सर्वेक्षणों के बारे में, जिनके बारे में आप जानते हैं, चर्चा कर सकते हैं।

क्रियाकलाप-5

यदि आपके सर्वेक्षण का उद्देश्य निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देना हो तो आप अपने स्कूल में सभी विद्यार्थियों में से प्रतिनिधि प्रतिदर्श का चयन करने के लिए क्या करेंगे–

(क) जिन विद्यार्थियों के अनेक भाई तथा बहन हैं, वह उन विद्यार्थियों की तुलना में जिनका एक भाई या बहन (या कोई भी नहीं) है, पढ़ाई में अच्छे हैं या बुरे?

(ख) प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1 से 5), माध्यमिक विद्यालय (कक्षा 6 से 8), उच्च माध्यमिक विद्यालय (9 से 10) तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (कक्षा 11 से 12) में अंतराल के समय में विद्यार्थियों का सबसे लोकप्रिय क्रियाकलाप कौन सा है?

(ग) क्या किसी विद्यार्थी का प्रिय विषय उसके प्रिय शिक्षक द्वारा पढ़ाया जाने वाला विषय है? क्या लड़के तथा लड़कियों में इस संबंध में कोई अंतर है?

(नोट : इन प्रत्येक प्रश्नों के लिए विभिन्न प्रतिदर्श रूपरेखा बनाएँ)।

समग्र सांख्यिकी–लिंग अनुपात में तीव्र गिरावट

आपने अध्याय 3 में लिंगानुपात में तीव्र गिरावट के बारे में पढ़ा है। हाल ही के दशकों में लड़कों की संख्या की तुलना में बहुत कम लड़कियाँ जन्म ले रही हैं तथा पंजाब, हरियाणा, दिल्ली तथा हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में यह समस्या चिंताजनक स्तर पर पहुँच गई है।

लिंगानुपात (तरुण या बाल) 0–6 वर्ष की आयु में 1000 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या व्यक्त करता है। यह अनुपात संपूर्ण भारत में या अनेक राज्यों, दोनों में दशकों के दौरान तीव्रता से कम हो रहा है। यहाँ पर भारत के तथा चयन किए गए राज्यों के 1991 तथा 2001 की जनगणना में दिए गए औसत तरुण लिंगानुपात को दिया गया है।

0–6 वर्ष के आयु वर्ग में प्रति 1000 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या

	1991	2001
भारत	945	927
पंजाब	875	793
हरियाणा	879	820
दिल्ली	915	865
गुजरात	928	878
हिमाचल प्रदेश	951	897

बाल लिंगानुपात एक ऐसा समग्र (या समष्टि) चर है जो तभी दिखाई देता है जब आप बड़ी जनसंख्याओं की सांख्यिकी को मिलाते (इकट्ठा रखते) हैं। हम एक परिवार को देखकर नहीं बता सकते कि समस्या इतनी विकट है। किसी भी एक परिवार में लड़के तथा लड़कियों के सापेक्षित अनुपात की क्षतिपूर्ति उन परिवारों के विभिन्न अनुपात से सदैव की जा सकती है जिन्हें हमने कभी नहीं देखा है। जनगणना जैसी पद्धतियों के प्रयोग द्वारा या बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण करके ही पूरे समुदाय के कुल अनुपात की गणना की जा सकती है तथा समस्या का पता लगाया जा सकता है। क्या आप ऐसे अन्य सामाजिक मुद्दों के बारे में सोच सकते हैं जिनका सर्वेक्षणों या जनगणनाओं द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है?

विशेषताएँ उस जनसंख्या की विशेषताओं से घनिष्ठ रूप से मिलती हों जिससे इसे लिया गया है। इनमें सूक्ष्म अंतर हो सकते हैं परंतु ऐसे विचलन की संभावना को निर्धारित किया जा सकता है। इसे सीमांत त्रुटि या प्रतिदर्श की त्रुटि कहा जाता है। यह अनुसंधानकर्ताओं की गलती से नहीं, अपितु इस बात से उत्पन्न होती है कि हम बहुत बड़ी जनसंख्या के लिए छोटे प्रतिदर्श प्रयोग कर रहे हैं। प्रतिदर्श सर्वेक्षणों के परिणामों की सूचना देते समय अनुसंधानकर्ताओं को अपने प्रतिदर्श के आकार तथा रूपरेखा तथा सीमांत त्रुटि के बारे में अवश्य बताना चाहिए।

सर्वेक्षण विधि की मुख्य विशेषता यह है कि यह अपेक्षाकृत कम समय तथा धन के द्वारा जनसंख्या के बारे में विस्तृत परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराती है। प्रतिदर्श जितना बड़ा होगा, इसके सही प्रतिनिधि होने के अवसर उतने ही ज़्यादा होंगे। यहाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण जनगणना का है जिसमें पूरी जनसंख्या शामिल है। व्यवहार में प्रतिदर्श का आकार 30–40 से लेकर हज़ारों में हो सकता है (राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन पर बॉक्स देखें)। केवल प्रतिदर्श का आकार ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, इसके चयन का तरीका ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में, प्रतिदर्श चयन के बारे में निर्णय प्रायः व्यावहारिक विचार विमर्श पर आधारित होते हैं।

उन परिस्थितियों में, जिनमें जनगणना का उपयोग व्यावहारिक तौर पर न किया जा सकता हो, वहाँ पर संपूर्ण जनसंख्या के अध्ययन हेतु सर्वेक्षण ही अध्ययन के उपलब्ध साधन होते हैं। सर्वेक्षण का महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि यह एक समग्र तसवीर उपलब्ध कराता है अर्थात यह एक व्यक्ति के स्थान पर सामूहिकता के आधार पर बनी तसवीर दिखाता है। बहुत सी सामाजिक समस्याएँ तथा मुद्दे इस समग्र स्तर पर दिखाई देते हैं, इन्हें खोज के अत्यधिक सूक्ष्म स्तरों पर पहचाना नहीं जा सकता।

तथापि अन्य अनुसंधान पद्धतियों की तरह से सर्वेक्षणों की भी अपनी कमज़ोरियाँ होती हैं। यद्यपि इसमें व्यापक विस्तार की संभावना होती हैं, यह विस्तार की गहनता के मूल्य पर प्राप्त किया जाता है। सामान्यतया एक बड़े सर्वेक्षण के भाग के रूप में उत्तरदाताओं से गहन सूचना प्राप्त करना संभव नहीं होता। उत्तरदाताओं की संख्या अधिक होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति पर व्यय किया जाने वाला समय सीमित होता है। साथ ही अन्वेषकों की अपेक्षाकृत बड़ी संख्या द्वारा सर्वेक्षण प्रश्नावलियाँ उत्तरदाता को उपलब्ध कराई जाती हैं, यह सुनिश्चित करना कठिन हो जाता है कि जटिल प्रश्नों या जिन प्रश्नों के लिए विस्तृत सूचना चाहिए, उन्हें उत्तरदाताओं से ठीक एक ही तरीके से पूछा जाएगा। प्रश्न पूछने या उत्तर रिकार्ड करने के तरीके में अंतर होने पर सर्वेक्षण में त्रुटियाँ आ सकती हैं। यही कारण है कि किसी भी सर्वेक्षण के लिए प्रश्नावली (कभी-कभी इन्हें 'सर्वेक्षण के उपकरण' भी कहा जाता है) की रूपरेखा सावधानीपूर्वक तैयार करनी चाहिए क्योंकि इसका प्रयोग अनुसंधानकर्ता के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाएगा, अतः इसके प्रयोग के दौरान इसमें त्रुटि को दूर करने या संशोधित करने की थोड़ी बहुत संभावना रहती है।

अन्वेषक तथा उत्तरदाता के बीच क्योंकि किसी प्रकार के दीर्घकालिक संबंध नहीं होते तथा इसके कारण कोई आपसी पहचान या विश्वास नहीं होता। किसी भी सर्वेक्षण में पूछे गए प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो कि अजनबियों के मध्य पूछे जा सकते हों तथा उनका उत्तर दिया जा सकता हो। कोई भी निजी या संवेदनशील प्रश्न नहीं पूछा जा सकता या अगर पूछा भी जाता है तो इसका उत्तर सच्चाईपूर्वक देने के स्थान पर 'सावधानीपूर्वक' दिया जाता है। इस प्रकार की समस्याओं को कभी-कभी 'गैर-प्रतिदर्श त्रुटियाँ' कहा जाता है। अर्थात ऐसी त्रुटियाँ जो

प्रतिदर्श की प्रक्रिया के कारण न हो अपितु अनुसंधान रूपरेखा में कमी या त्रुटि के कारण हो या इसके कार्यान्वयन की विधि के कारण हो। दुर्भाग्यवश इनमें से कुछ त्रुटियों का पता लगाना तथा इनसे बचना कठिन होता है। इस कारण से सर्वेक्षणों में गलती होना तथा जनसंख्या की विशेषताओं के बारे में भ्रामक या गलत अनुमान लगाना संभव होता है। अंत में, किसी भी सर्वेक्षण की सबसे महत्त्वपूर्ण सीमा यह है कि इसे सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए इन्हें कठोर संरचित प्रश्नावली पर आधारित होना पड़ता है। हालाँकि प्रश्नावली की रूपरेखा चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, इसकी सफलता अंत में अन्वेषकों तथा उत्तरदाताओं की अंत:क्रियाओं की प्रकृति पर और विशेष रूप से उत्तरदाता की सद्‌भावना तथा सहयोग पर निर्भर करती है।

साक्षात्कार

साक्षात्कार मूलत: अनुसंधानकर्ता तथा उत्तरदाता के बीच निर्देशित बातचीत होती है, हालाँकि इसके साथ कुछ तकनीकी पक्ष जुड़े होते हैं। प्रारूप की सरलता भ्रामक हो सकती है क्योंकि एक अच्छा साक्षात्कारकर्ता बनने के लिए व्यापक अनुभव तथा कौशल होना ज़रूरी होता है। साक्षात्कार, सर्वेक्षण में प्रयोग की गई संरचित प्रश्नावली तथा सहभागी प्रेक्षण पद्धति की तरह पूर्णरूप से खुली अंत:क्रियाओं के बीच स्थान रखता है। इसका सबसे बड़ा लाभ प्रारूप का अत्यधिक लचीलापन है। प्रश्नों को पुन:निर्मित किया जा सकता है या अलग ढंग से बताया जा सकता है; बातचीत में हुई प्रगति (या प्रगति कम होने पर) के अनुसार विषयों या प्रश्नों का क्रम बदला जा सकता है; जिन विषयों पर अच्छी सामग्री मिल रही हो, उन्हें विस्तारित किया जा सकता है तथा जिन मामलों में प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ हो रही हों, उन्हें संक्षिप्त रूप दिया जा सकता है या किसी अन्य अवसर पर बाद में जानने हेतु स्थगित किया जा सकता है और यह सब साक्षात्कार के दौरान किया जा सकता है।

दूसरी तरफ़ साक्षात्कार पद्धति के रूप में साक्षात्कार से संबंधित लाभों के साथ अनेक हानियाँ भी हैं। इसका यही लचीलापन उत्तरदाता की मनोदशा बदल जाने के कारण या फिर साक्षात्कार करने वाले की एकाग्रता में त्रुटि होने के कारण साक्षात्कार को कमज़ोर बना देता है। इस प्रकार इस अर्थ में यह एक अविश्वसनीय तथा अस्थिर प्रारूप है जो जब कार्य करता है तो बहुत अच्छा करता है तथा जब असफ़ल होता है तो बहुत बुरी तरह से होता है।

साक्षात्कार लेने की अनेक शैलियाँ हैं तथा इससे संबंधित विचार तथा अनुभव लाभों के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ व्यक्ति अत्यंत असंरचित प्रारूप को प्राथमिकता देते हैं जिसमें वास्तविक प्रश्नों के स्थान पर विषय की जाँच सूची ही होती है। अन्य व्यक्ति इसके संरचित रूप को वरीयता देते हैं जिसमें सभी उत्तरदाताओं से विशेष प्रश्न पूछे जाते हैं। परिस्थितियों तथा वरीयताओं के अनुसार साक्षात्कार को रिकार्ड करने के तरीके भी अलग-अलग हैं जिनमें वास्तविक वीडियो या ऑडियो रिकार्ड करना, साक्षात्कार के दौरान विस्तृत नोट तैयार करना,

या स्मरण शक्ति पर निर्भर करना और साक्षात्कार समाप्त होने पर इसे लिखना शामिल है। रिकार्ड करने वाले या इसी प्रकार के अन्य उपकरणों का बार-बार प्रयोग करने से उत्तरदाता असामान्य महसूस करता है तथा इससे बातचीत में काफ़ी हद तक औपचारिकता आ जाती है। दूसरी तरफ़ जब रिकार्ड करने की अन्य कम व्यापक विधियों का प्रयोग किया जाता है तो कभी-कभी महत्त्वपूर्ण सूचना छूट जाती है या रिकार्ड नहीं हो पाती है। कभी-कभी साक्षात्कार के समय की भौतिक या सामाजिक परिस्थितियाँ भी रिकार्ड के माध्यम को निर्धारित करती हैं। बाद में प्रकाशन के लिए साक्षात्कार को लिखने या अनुसंधान रिपोर्ट के हिस्से के रूप मे लिखने का तरीका भी भिन्न हो सकता है। कुछ अनुसंधानकर्ता प्रतिलिपि को संपादित करना तथा इसे 'स्पष्ट' नियमित वर्णनात्मक रूप से प्रस्तुत करना पसंद करते हैं; जबकि दूसरे मूल वार्तालाप को यथासंभव वैसा ही बनाए रखना चाहते हैं तथा इसके लिए वे हर संभव प्रयास करते हैं।

साक्षात्कार को प्रायः अन्य पद्धतियों के साथ अनुपूरक के रूप में विशेषतया सहभागी प्रेक्षण तथा सर्वेक्षणों के साथ प्रयुक्त किया जाता है। 'महत्त्वपूर्ण सूचनादाता' (सहभागी प्रेक्षण अध्ययन का मुख्य सूचनादाता) के साथ लंबी बातचीत से प्रायः संकेंद्रित जानकारी प्राप्त होती है जो साथ में लगाई गई सामग्री को स्पष्ट करती है तथा सही स्थान प्रदान करती है। इसी तरह से गहन साक्षात्कारों द्वारा सर्वेक्षण के निष्कर्षों को गहनता तथा व्यापकता प्राप्त होती है। हालाँकि एक पद्धति के रूप में साक्षात्कार व्यक्तिगत पहुँच पर और उत्तरदाता तथा अनुसंधानकर्ता के आपसी संबंधों या आपसी विश्वास पर निर्भर होता है।

शब्दावली

जनगणना–एक व्यापक सर्वेक्षण जिसमें जनसंख्या का प्रत्येक सदस्य शामिल रहता है।

वंशावली–एक विस्तृत वंशवृक्ष जो विभिन्न पीढ़ियों के सदस्यों के पारिवारिक संबंधों को दर्शाता है।

गैर-प्रतिदर्श त्रुटि–पद्धतियों के प्रयोग और प्रारूप के कारण सर्वेक्षण परिणामों में हुई त्रुटियाँ।

जनसंख्या–सांख्यिकीय अर्थ में, एक बड़ा निकाय (व्यक्तियों, गाँवों, घरों, इत्यादि का) जिससे प्रतिदर्श का चयन किया जाता है।

संभाविता–(सांख्यिकीय अर्थ में) किसी घटना के घटित होने या न होने की संभावना।

प्रश्नावली–साक्षात्कार या सर्वेक्षण में पूछे जाने वाले प्रश्नों की लिखित सूची।

यादृच्छिकीकरण–यह सुनिश्चित करना कि कोई घटना (जैसे किसी प्रतिदर्श में किसी विशेष वस्तु का चयन) विशुद्ध रूप से केवल अवसर पर ही निर्भर हो, न कि किसी अन्य पर।

प्रतिबिंबिता–एक अनुसंधानकर्ता की वह क्षमता जिसमें वह स्वयं का प्रेक्षण और विश्लेषण करता है।

प्रतिदर्श–एक बड़ी जनसंख्या से लिया गया उपभाग या चयनित हिस्सा, जो उस बड़ी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रतिदर्श त्रुटि–ऐसी त्रुटि जिससे सर्वेक्षण के परिणामों में बचा नहीं जा सकता क्योंकि यह समग्र जनसंख्या पर आधारित होने के स्थान पर सिर्फ़ एक छोटे प्रतिदर्श से प्राप्त जानकारी पर आधारित होती है।

स्तरीकरण–सांख्यिकीय अर्थ के अनुसार जनसंख्या के संबंधित आधारों जैसे लिंग, स्थान, धर्म, आयु इत्यादि के आधार पर विभिन्न समूहों में उप-विभाजन।

अभ्यास

1. वैज्ञानिक पद्धति का प्रश्न विशेषतः समाजशास्त्र में क्यों महत्त्वपूर्ण है?
2. सामाजिक विज्ञान में विशेषकर समाजशास्त्र जैसे विषय में 'वस्तुनिष्ठता' के अधिक जटिल होने के क्या कारण हैं?
3. वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने के लिए समाजशास्त्री को किस प्रकार की कठिनाइयों और प्रयत्नों से गुज़रना पड़ता है?
4. 'प्रतिबिंबता' का क्या तात्पर्य है तथा यह समाजशास्त्र में क्यों महत्त्वपूर्ण है?
5. सहभागी प्रेक्षण के दौरान समाजशास्त्री और मानवविज्ञानी क्या कार्य करते हैं?
6. एक पद्धति के रूप में सहभागी प्रेक्षण की क्या-क्या खूबियाँ और कमियाँ हैं?
7. सर्वेक्षण पद्धति के आधारभूत तत्त्व क्या हैं? इस पद्धति का प्रमुख लाभ क्या है?
8. प्रतिदर्श प्रतिनिधित्व चयन के कुछ आधार बताएँ?
9. सर्वेक्षण पद्धति की कुछ कमज़ोरियों का वर्णन करें?
10. अनुसंधान पद्धति के रूप में साक्षात्कार के प्रमुख लक्षणों का वर्णन करें।

सहायक पुस्तकें

बूमन, ज़गमुंट. 1990. *थिंकिंग सोशियोलॉजिकली*. बासिल ब्लेकवैल, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

बेकर, हॉवर्ड एस. 1970. *सोशियालॉजिकल वर्क : मैथेड एंड सबस्टेंस*. द पेंगुइन प्रेस, एलेन लेन।

बेते, आंद्रे और मदन, टी.एन. (सं). 1975. *एनकाउंटर एंड एक्सपीरियंस : पर्सनल एकाउंटस ऑफ़ फ़ील्डवर्क*. विकास पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।

बरज़ास, रोबर्ट जी. (सं). 1982. *फ़ील्ड रिसर्च : ए सोर्सबुक एंड फ़ील्ड मैन्युअल.* जार्ज एलेन एंड अनविन, लंदन।

कोज़र, लेविस. रिया, ए.बी. स्टीफन पी.ए. और नॉक, एस.एल. 1983. *इंट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी*. हरकोर्ट ब्रेस जोहनोविच, न्यूयार्क।

श्रीनिवास, एम.एन., शाह ए.एम. और रामास्वामी, ई.ए. (सं). 2002. द *फ़ील्डवर्कर एंड द फ़ील्ड : प्रॉब्लम्स एंड चैलेंजेस इन सोशियोलॉजिकल इंवेस्टीगेशन.* द्वितीय संस्करण, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस, नयी दिल्ली।